अनुकरण, अनुसरण, आज्ञापालन, अनुशासन और स्वानुशासन

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वांग्मय से एक संकलन
Version 2

29 अक्टूबर २०१९

श्रद्धेय श्री ए. नागराज जी द्वारा प्रणेत मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) में से शब्दों के संदर्भों के खोजने के क्रम में यह "अनुकरण,अनुसरण, आज्ञापालन, अनुशासन और स्वानुशासन" शब्दों के संदर्भों का संकलन है। यदि यहाँ लिखे हुए और मध्यस्थ दर्शन के मूल वाङ्ग्मय में कोई अंतर मिले तो मूल वाङ्ग्मय को ही सही माना जाए। यहाँ लिखे हुए में त्रुटियों के सुधार और इसको और उपयोगी बनाने हेतु भागीदारी करने के लिए रोशनी साहू (sahuroshani@gmail.com) से संपर्क करें।

अनुक्रमणिका

शब्द	पृष्ठ न.
1. अनुकरण	३
2. अनुसरण	३४
3. आज्ञापालन	६०
4. अनुशासन	७५
5. स्वानुशासन	९३

अनुकरण

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 14/04/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 29/10/2019

अनुकरण की परिभाषा

- संप्रेषणा के रूप में किया गया मानसिक, कायिक व वाचिक क्रियाओं का दोहराना।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृष्ठ नंबर: 10)

अनुक्रमणिका

“अनुकरण” को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ५
2. मानव कर्म दर्शन ७
3. मानव अभ्यास दर्शन ९
4. मानव अनुभव दर्शन १०
5. समाधानात्मक भौतिकवाद ११
6. व्यवहारात्मक जनवाद १३
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद १५
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र १६
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र १७
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान १८
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या १९
12. जीवन विद्या –एक परिचय २०
13. विकल्प २०
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु २०
15. मानवीय आचरण सूत्र २०
16. संवाद – भाग १ २१
17. संवाद – भाग २ ३१

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- गौरवता: – निर्विरोध पूर्वक अंगीकार किये गए **अनुकरण**, प्रयास, प्रवृत्ति ही गौरवता है।
  (अध्याय:2, पृष्ठ नंबर: 4)
- कर्म: – विचार पक्ष के आकार का **अनुकरण** करने के लिए श्रम की कर्म संज्ञा है। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 56)**
- आशाएँ भ्रम मुक्ति पूर्वक सार्वभौम व्यवस्था अर्थ एवं काम के रूप में प्रलोभन, प्रत्याशा भेद से दर्शन (शास्त्र); स्वीकृत व **अनुकरण** भेद से काव्य; जिस कार्य, विचार व व्यवहार से क्लेशोदय हो वह निषेध तथा जिससे सुखोदय होता है, वह विधि के रूप में स्वीकारी जाती है। **(अध्याय: 9, पृष्ठ नंबर: 67)**
- माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं. उदाहरणार्थ शैशव–अवस्था में केवल बालक का लालन–पालन ही माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं. कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं। इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति, अनुशासन, शुचिता, संस्कृति का **अनुकरण**, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं. सभ्यता के मूल में हर माता–पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिए तन, मन, एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं। संतान के लिए हर माता–पिता अपने मन में अभ्युदय तथा समृद्धि की ही कामना रखते हैं, इन सबके मूल में कृतज्ञता की वांछा रहती है जो संतान माता–पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं। **(अध्याय: 16 (i), पृष्ठ नंबर: 122)**
- वृत्ति के आश्रय में मन, चित्त के आश्रय में वृत्ति, बुद्धि के आश्रय में चित्त का न होना ही मन और वृत्ति, वृत्ति और चित्त, चित्त और बुद्धि के बीच साविपरीतता है, यही बौद्धिक रहस्य है।

  उपरोक्त साविपरीतता को समाप्त करने तथा बौद्धिक रहस्यता अथवा अहंकार का उन्मूलन करने के लिए निश्चित प्रक्रिया है। इस निश्चित प्रक्रिया के अनुसार अभ्यास एवं व्यवहार से ही बौद्धिक रहस्यता का उन्मूलन होता है। ऐसी प्रक्रिया दो प्रकार से गण्य है:–

  एक– अनुसंधान।

  दो– अनुसरण, **अनुकरण**, अध्ययन। **(अध्याय :17, पृष्ठ नंबर: 141–142)**

- दो– अनुसरण, **अनुकरण**, अध्ययन :– इसका विषद विश्लेषण पूर्व के अध्यायों में यथा–स्थान किया है, जिसका सारभूत कार्यक्रम है. यह जागृत परंपरागत विधि से सार्थक होता है.

  (१)न्यायपूर्ण व्यवहार का **अनुकरण** या अनुसरण करना.

  (२)समाधान पूर्ण (धर्म पूर्ण) विचार में प्रसक्त (प्रवृत्त) होना.

  उपरोक्त दोनों कार्यक्रमों की दृढ़ता एवं निष्ठा की अपेक्षा में सत्यता की अनुभूति का अधिकार जागृति पूर्वक प्राप्त होता है, फलस्वरूप बुद्धि आप्लावित हो जाती है.

  उपरोक्तानुसार जब साधक मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं धर्म पूर्ण विचार में प्रतिष्ठित हो जाता है तब मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि की क्रियाएँ किस प्रकार से संपादित होती हैं, इसका अनुभूतिपरक वर्णन नीचे दिया गया है.... **(अध्याय : 17, पृष्ठ नंबर: 143)**

- विकसित का एकसूत्रवत **अनुकरण** तथा अनुसरण पूर्वक स्वयं स्फूर्त होना ही और जागृति को प्रमाणित करना ही सर्वमानव का वैभव है। **(अध्याय : 17, पृष्ठ नंबर: 151)**
- लोकेषणा ही श्रेष्ठ ऐषणा है। देव मानव स्वयं की जागृति को प्रमाणित करने के अर्थ में मानवीय परंपरा को पोषण और संवर्धन के लिए जन बल व धन का नियोजन करते हैं। यही यश का कारण व स्वरूप है, जिसकी सार्थकता मानव परंपरा में व्यवस्था सार्वभौमिकता के रूप में होना है। इसके फलन में अखंड समाज की ख्याति होना आवश्यक है। लोकेषणा अर्थात जागृत मानव परंपरा को लोकव्यापीकरण करने के क्रम में यश का स्वीकृति है। यश का तात्पर्य – जागृति की स्वीकृति, सहानुभूति, **अनुकरण** क्रिया है। मानवीयता के विरोधी जितने भी कायिक, वाचिक, मानसिक क्रियाकलाप हैं उससे मुक्त रहना ही यश है। **(अध्याय : 16 (ii), पृष्ठ नंबर: 163)**
- **गौरव**: – स्वीकृति पूर्वक (निर्विरोध पूर्वक) अंगीकार किये गए **अनुकरण** । **(अध्याय :18, पृष्ठ नंबर: 171)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण भेद से प्रत्यक्ष क्रियायें हैं।

  सामान्य बुद्धि से स्थूल, विशेष बुद्धि से सूक्ष्म, विशिष्ट बुद्धि से कारण का प्रत्यक्षीकरण प्रसिद्ध है। इसी के आधार पर अनुमान और आगम क्रिया का भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप में रहने का प्रमाण सिद्ध होता है। रूप और गुण स्थूल; गुण और स्वभाव सूक्ष्म; स्वभाव और धर्म कारण क्रियायें है। इसलिये

  व्यवहार उत्पादन कर्मों में तीन स्तर में प्रवृत्तियों को पाया जाता है:– (1) स्वतंत्र (2) **अनुकरण** (3) अनुसरण।

  स्वतंत्र प्रवृत्तियों की क्रियाशीलता उन परिप्रेक्ष्यों में स्पष्ट होती हैं जिनके सम्बन्ध में ये विशेषज्ञता हैं।

  जो विशेषज्ञ होने के लिये इच्छुक हैं उन्हें **अनुकरण** क्रिया में व्यस्त पाया जाता है।

  जिनमें विशेषज्ञता के प्रति इच्छा जागृत नहीं हुई है उन्हें अनुसरण क्रिया में अनुशीलनपूर्वक ही कर्म एवं व्यवहार रत पाया जाता है। ये विकास एवं अवसर के योगफल का द्योतक है। अवसर प्रधानत:व्यवस्था एवं शिक्षा ही है।

  स्वतंत्र–सक्रियता स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण क्रिया की सान्निध्यानुभूति–क्षमता से; **अनुकरणात्मक** सक्रियता स्थूल एवं सूक्ष्म क्रिया की सान्निध्यानुभूति क्षमता से; अनुसरणात्मक–सक्रियता स्थूल क्रिया की अनुभूति–क्षमता से सम्पन्न पायी जाती है। यही व्यंजनीयता की क्षमता में प्रत्यक्ष अन्तरान्तर है।

  स्वतंत्र सक्रियता में नियंत्रण–क्षमता स्वायत्त, **अनुकरण**–क्षमता में स्वेच्छा से नियन्त्रित होने की क्षमता, अनुसरण सक्रियता में अनुशासित होने की क्षमता समाहित है।

  सार्वभौमिक कामनानुरूप कार्यक्रम में रत होने से ही सभी स्थितियों में दोष दूर होते हैं। यही मांगल्यप्रद है।
  (अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 22–23)

- ध्वनि तरंग– ध्वनि और भाषा–तरंग, ध्वनि एक से अधिक वस्तुओं के संघर्ष से, एक में होने वाली स्वयं स्फूर्त क्रिया से ध्वनि होना पाया जाता है। इसके प्रयोग में कोई दो पत्थर को घिसने से ध्वनि होता है। कोई भी दो धातु के आपस में टकराने से ध्वनि होता है। इसी प्रकार पत्ते हवा से हिलने पर भी ध्वनि होता है। इसी प्रकार मानव गला, तालु, ओंठ, जीभ के संयोग से ध्वनि पैदा करते हैं, इसको राग कहते हैं, यह भी ध्वनि ही है। इसी प्रकार से गाय, बैल, भैंस, बकरी, जीव–जानवर अपने–अपने ढंग से ध्वनि निष्पादित करते हैं। जीव, जानवर, चिड़िया, मेंढक आदि के ध्वनि, उन–उन प्रजाति के लिए भाषा भले ही हो, और प्रकृति के लिए ध्वनि रुप ही स्वीकार हुआ

है। वैसे ही, मानव के लिए भी अपनी भाषा अर्थ संगत भले हो, अन्य प्रकृति के लिए ध्वनि होना ही प्रमाणित है। कोई–कोई जीव–जानवर ऐसे हैं, जो मनुष्य के संकेतों का **अनुकरण** कर लेते हैं। इस प्रकार ध्वनि और भाषा का स्पष्ट स्वरुप मानव को समझ में आता है। अर्थ को इंगित कराने वाले शब्द तरंग को भाषा तरंग कहते हैं। इन दोनों प्रकार की निष्पत्ति स्थली से जुड़े हुए जितने भी विरल पदार्थ रहते हैं, उनके ऊपर उसका दबाव होना पाया जाता है। फलत: वातावरण स्थली अणु समूह के ऊपर जो दबाव आरोपित हुई, और उनमें कम्पन तैयार हुई, इसको हम तरंग कह रहे हैं। इस विधि से तरंग, अणु से अणु को संप्रेषित होते हुए अथवा अनुप्राणित होते हुए दूर–दूर तक पहुँच जाते हैं। ऐसे शब्द और ध्वनि को विद्युतवाहिता पूर्वक प्रसारित करने की क्रिया को रेडियो, टेलीविजन तरंग माना जा रहा है। इस स्वरुप में हमें शब्द तरंग को इसलिए समझना जरुरी है कि हम मानव शब्दों को जितना भी प्रयोग करते हैं, उसकी सार्थकता को अपने नजरिये में बनाया रखना जरुरी है। क्योंकि, हम स्वयं सार्थक होना चाहते हैं। सार्थकता का स्वरुप पहले स्पष्ट हो चुका है। सार्थकता का सूत्र मानव के समझदार होने से, व्यवहार में जीने से, जीवनाकाँक्षा मानवाकाँक्षा को प्रमाणित करने से है। इसीलिए हर शब्द को सार्थकता के अर्थ में प्रयोग करना जरुरी है। (अध्याय :3 –(13), पृष्ठ नंबर: 125)

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(**संस्करण: द्वितीय, मुद्रण:** 2010)

- मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में ही अनुभव में प्रवृत्त रहने, अनुभव से प्रभावित होने और प्रभावित करने तथा अनुभव के लिए जागृतिशील रहने की संभावना एवं अवसर है, क्योंकि अनुभव आत्मा में ही होता है, अनुभव मध्यस्थता है। यह उत्पादन में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में समाधान एवं अनुभव में सत्य है साथ ही मानव जीवन में, से, के लिए प्रमाण भी है। सम और विषम क्रियाएं मध्यस्थ क्रिया से अनुशासित है ही, साथ ही अनुसरण, **अनुकरण** व अनुगमन के लिए भी बाध्य हैं। (**अध्याय** :1 , **पृष्ठ नंबर:** 14–15)
- स्वयं में विश्वास क्रम में व्यक्तित्व एवं प्रतिभा का संरक्षण ही अर्थ का संरक्षण है।

  यही मानव जीवन का आद्यान्त अर्थ है। व्यक्तित्व व प्रतिभा सम्पन्न विचार ही आचरण, व्यवहार उत्पादन तथा व्यवस्था में भागीदारी है। व्यक्तित्व ही न्याय पूर्ण जीवन है। प्रतिभा स्वंय की स्थिति एवं व्यवस्था में विस्तार ही है। व्यक्तित्व का यह आचरण ही अर्थ का सदुपयोग पूर्वक संरक्षण स्पष्ट रूप में प्रतिभा का उदय है जो **अनुकरणीय** है। व्यक्तित्व और प्रतिभा का संतुलन ही जीवन है, जो सतर्कता एवं सजगता है। मानवीयता पूर्वक ही व्यक्तित्व पूर्ण होता है। "तात्रय" से अतिरिक्त मानव "में, से, के लिये" अभिव्यक्ति नहीं है। इसलिए भाव = मौलिकता = स्वमूल्य तथा मूल्याँकन क्षमता = मौलिकता का भास, आभास, प्रतीति व अनुभूति = व्यक्ति की क्षमता, योग्यता, पात्रता = जागृति = वातावरण, अध्ययन और स्वसंस्कार = उत्पादन, व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी= भाव प्रसिद्ध है। (**अध्याय** : 4, **पृष्ठ नंबर:** 53)

- मानव जीवन की विधि एवं नीति–संहिता में असंदिग्धता ही शिक्षा में पूर्णता है। व्यवस्था की सफलता उसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत पाई जाने वाली जनजाति में तारतम्यता ही असंदिग्धता का प्रत्यक्ष रूप है। विधि–संहिता ही मानव–जीवन–संहिता है। यही प्रकृति के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति की भाषाकरण संहिता है। उसका **अनुकरण**, अनुसरण और आचरण–प्रक्रिया ही नीति है। यही मानव जीवन का कार्यक्रम है। (**अध्याय** : 5, **पृष्ठ नंबर:** 74–75)

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016)

- संपूर्ण प्रकृति ब्रह्म में अनुप्राणित होना–रहना पाई जाती है। अस्तु, उसकी अनुभूति–योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक आनंद की निरंतरता नहीं है। उसके लिए मानवीयता पूर्ण व्यवहार का **अनुकरण**, अनुसरण तथा अतिमानवीयता योग्य अभ्यास ही एक मात्र उपाय है। **(अध्याय : 7, पृष्ठ नंबर: 40)**

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- पदार्थावस्था में तात्विक क्रिया में परस्पर परमाणु अंश की निश्चित दूरियाँ स्वयं उनके परस्परता की पहचान को प्रकाशित करता है। साथ ही भौतिक और रासायनिक वस्तुओं का संगठन भी परस्पर अणुओं की पहचान का द्योतक सिद्ध हो जाता है। प्राणावस्था में रासायनिक अणु संरचनाएँ, प्राणकोशिकाओं की पहचान का द्योतक है। यह बीज वृक्ष नियम पूर्वक सम्पादित होते हैं। जीवावस्था में जड़–चैतन्य–प्रकृति का प्रारंभिक प्रकाशन है, जिसमें से शरीर रचना जड़–प्रकृति स्वरूप होने के कारण वंशानुषंगी सिद्धांत पर आधारित रहता हैं। साथ ही जीवन संचेतना जीवावस्था में अध्यास के रूप में प्रभावित रहता है। अध्यास का तात्पर्य परम्परागत कार्यकलापों और विन्यासों को गर्भावस्था से ही स्वीकारने के क्रम में गुजरते हुए जन्म के अनन्तर उसे **अनुकरण** करने की प्रक्रिया से है। जैसे गाय की सन्तान गाय जैसे कार्यकलापों को करते हुए देखने को मिलता है। इसी प्रकार सभी प्रजाति के जीवों में स्पष्ट है। ज्ञानावस्था में मानव जड़–चैतन्य का संयुक्त प्रकाशन होते हुए मानव शरीर भी प्रधानत: वंशानुषंगी होता है। साथ ही संचेतना संस्कारानुषंगी होता है। इसका साक्ष्य स्वयं शिक्षा–संस्कार व्यवस्था परम्पराएँ है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव संस्कारानुषंगी प्रणाली से पहचानने के कार्यकलाप को सम्पादित करता है। **(अध्याय : 4, पृष्ठ नंबर: 56)**
- बीज के मूल में एक ही प्रजाति की प्राण कोशिका की गवाही मिलती है। सप्राण कोशिका और निष्प्राण कोशिकाओं में देखने से यही पता चलता है कि निष्प्राण कोशिकाओं में श्वसन क्रिया नहीं होती जबकि सप्राण कोशिकाओं में श्वसन क्रिया होती है। इसी श्वसन क्रिया के आधार पर ही सप्राण कोशिकाओं की रचना को पहचाना जाता हैं। वही रसायन जिसे प्राण कोशिकाओं में देखा गया, दोनों में समान होते हुए भी निष्प्राण में श्वसन क्रिया नहीं पायी जाती। इस प्रकार सप्राण कोशिकाओं और निष्प्राण कोशिकाओं की रचना और क्रिया को स्वयं मौलिक रूप में अस्तित्व में पाया जाता हैं। इसके तीन प्रधान कारक तत्व सिद्ध होते है। प्रथम – वे अणु, जो प्राण कोशिकाओं के रूप में कार्यरत है जिसका मूल द्रव्य रूप (रासायनिक गठन) है, द्वितीय – वातावरण और तृतीय – नैसर्गिकता है। नैसर्गिकता का तात्पर्य जिस विधि से उस इकाई पर दवाब पड़ा हो उससे है। वातवारण का तात्पर्य इकाई पर प्रभावित दवाब से है। इस प्रकार तीनों कारक तत्व स्वयं स्पष्ट है। वंशानुषंगीयता के क्रम में बीजों के आधार पर रचना (वृक्ष) को और रचनाओं (वृक्षों) के आधार पर बीजों को पहचानने का विश्वास किया जाता हैं। बीजों के ऊपर ध्यान दें तो पता चलता हैं कि उसके स्तूषी (अंकुर का मूल रूप) में सम्पूर्ण रचना (वृक्ष) का स्वरूप नियम और संगति बद्ध रूप में होना पाया जाता है। नियम बद्ध होने का तात्पर्य यह है कि पूर्व रचनाक्रम का **अनुकरण** करने की क्षमता का होना। संगति–बद्ध का तात्पर्य योग संयोग को पाकर अंकुरण में प्रवृत्त होने की योग्यता से है। इसी तथ्यवश प्रत्येक बीज में अनुकूल भूमि और वातावरण को पाकर रचना होने की व्यवस्था रहती हैं। इस क्रम में इसी पृथ्वी पर अनेक बीज और रचनाएँ देखने में आती हैं। इससे स्पष्ट होता हैं कि सर्वप्रथम एक कोशिका ही

अनके कोशिकाओं में परिवर्तित हुई, वह एक ही प्रजाति की रही है। पुनः विभिन्न मापदण्डों के आधार पर अर्थात् प्राण सूत्र में पाये जाने वाले अनुसंधान प्रवृत्ति, वातावरण और नैसर्गिक दवाब के क्रम में अनेकानेक प्रकार की रचनाएँ और बीज इस वर्तमान में धरती पर समृद्ध हुई। ''रचना सम्पूर्ण विकास नहीं" क्योंकि ''जो जिससे बना होता हैं वह उससे अधिक नहीं होता।" सम्पूर्ण प्रकृति में भौतिक, रासायनिक, अणु और प्राण कोशिकाओं की रचना प्रसिद्ध है। इन कोशिकाओं की संयुक्त रचना में भी उतने ही गुण विद्यमान रहते हैं। जैसे लोहे से बनी हुई छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी रचना लोहे से न कम और न अधिक होती है। अधिक–कम का मतलब उनके ''त्व" (जैसे लोहे में लौहत्व) से हैं। इसी प्रकार वृक्षत्व, लौहत्व, मानवत्व इत्यादि। ''त्व" का तात्पर्य इकाई की मौलिकता है। मौलिकता स्वभाव होती हैं। प्रत्येक इकाई में जैसा पहले कहा गया–गाय, घोड़ा आदि में उन के स्वभाव को कम से कम उन–उन रचनाओं को शरीर आयु पर्यन्त स्थिर रखने के क्रम में ही वंशानुषंगीयता स्पष्ट होती गयी। यह एक विलक्षण स्थिति सम्मुख होती हैं कि इस धरती पर मानव के अतिरिक्त सभी रचनाओं (अवस्थाओं) यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था एवं जीवावस्था में देखने पर पता चलता हैं कि लोहा जब तक रहता है तब तक उसके त्व में अर्थात् लोहत्व में वैपरीत्यता नहीं होती। उसी भाँति आम, बाघ, भालू, गाय आदि में भी वैविध्यता नहीं होती। जबकि मानव को देखें तो पता चलता है कि इसके विपरीत अर्थात् मानवत्व के विपरीत स्थिति में अधिकतम व्यक्ति प्रकाशित है। तात्पर्य यह कि मानव ही इस धरती पर ऐसी एक इकाई है जो मानवत्व के विपरीत कार्य, व्यवहार–विन्यास करते हुए भी अपने को श्रेष्ठ और विकसित होने का दावा करता है। जैसे अधिकतम शोषण एवं युद्ध में समर्थ व्यक्ति, परिवार, समाज अथवा राष्ट्र को विकसित समझा जा रहा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मानव अपने त्व को वंशानुषंगीयता में खोजने के अरण्य में भटक गया है या मिटने की तैयारी में आ गया है। मानव का वर्चस्व वंशानुषंगीयता में उज्ज्वल एवं **अनुकरण** होने की व्यवस्था होती तब क्या होता ? या तो वंशानुषंगीयता के समर्थक कहलाने वालों के अनुसार मानव के पूर्वज जैसे बन्दर थे वे मानव क्यों बन गये? बदल क्यों गये? या तो बदलना को विकास समझ लें। इसी प्रकार, पूर्व पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी को बिना समझे व सीखे क्यों नहीं आता? यह उन मनीषियों के लिए विचार करने का एक मुद्दा है।.... **(अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर: 70–72)**

- मानव को देखें तो पता चलता हैं कि मानव में वैविध्यता नहीं के बराबर रह गई। किन्तु इनमें वंशानुषंगीय अस्थिरता चरमावस्था में पहुँच गई। जैसे चोर का बेटा चोर हो ऐसा आवश्यक नहीं। विद्वान की संतान ने विद्वता का **अनुकरण** नहीं किया, जबकि मूर्ख की संतान विद्वान भी होती है। आश्चर्य की बात है कि मानव फिर भी स्वयं को वंशानुषंगीयता का दावेदार, प्रणेता मान रहा है। यह कितनी दयनीय स्थिति है? जिन वंशानुषंगीयता के आधार पर प्रतिवर्ष ही अनेक निबंध, प्रबंध तैयार हो रहा हैं ये कहाँ तक मानवोपयोगी है? **(अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर: 74)**

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- क्रूरता, हिंसा और युद्ध मानसिकता :–

  आदि मानव में भी घटनाओं के साथ तदाकार होना, कम से कम **अनुकरण** में प्रवर्तित होना, कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतंत्रता के योगफल की महिमा रही है। मानव परंपरा के आरंभिक काल में सर्वाधिक भौगोलिक परिस्थितियाँ इस धरती पर प्रकट होने एवं वनस्पति मानव जाति के विकास के अनुकुल रहना आज भी जनमानस में स्वीकृत होता है क्योंकि शनैः शनैः वन का शोषण व क्षरण मानव के हाथो होना आँकलित होता है। ऐसी वनस्थली में आदि मानव के सम्मुख वन, वन्य–पशु, प्राणी, हवा, जल, सूर्य प्रकाश पृथ्वी ही प्रथम नैसर्गिकता के रूप में समीचीन रहते रहे है। इन सभी ने मानव पर प्रभाव डाला। इनमें से हवा, जल, प्रकाश धरती की स्वीकृति और जंगल, वन्य प्राणी तथा उनसे संपन्न होने वाले क्रिया–कलाप की अस्वीकृति रही, फलस्वरूप वन्य प्राणियों के साथ हिंसक रवैया और वनस्थली को मैदान बनाने का रवैया मानव ने अपनाया। इसी क्रम में परिवार और ग्राम कबीलों में परिस्थितिजन्य मान्यता रूढ़ियों को अपनी–अपनी भाषा विधि से अग्रिम पीढ़ियों में संप्रेषित करने का कार्य भी होता ही रहा। आदिकाल में भय के अलावा भाषा में वर्णन करने की कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके अलावा कोई चीज रही है – वह है क्रूर वन्य प्राणियों के साथ जूझकर मारने के उपरान्त उत्सव मनता ही रहा। उत्सव से आरंभ हुआ अलंकार और श्रृंगार वस्तुओं का उत्पादन और उपभोग। यह आज अत्याधुनिक युग में भी स्वीकृत होता ही है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 5)**

- मानव के हर रंग रूप संबंध में समानता संवाद का दूसरा मुद्दा बनता है हर मानव अपने पहचान को बनाए रखने के लिए बाल्यकाल से ही प्रयत्नशील है पहचान प्रस्तुत करने की प्रवृतियां विभिन्न तरीके से प्रस्तुत होती हुई आंकलित होती है परिस्थितियां भिन्न–भिन्न रहते हुए प्रवृत्तियों में समानता होती ही है इसी के साथ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक संरक्षण में पोषण में भरोसा रखने वाली प्रवृत्ति मिलती है। संरक्षण पोषण के क्रम में न्याय की अपेक्षा प्रस्फुटित होती हुई देखने को मिलती है। किशोर अवस्था तक सही कार्य व्यवहार करने की इच्छाएँ आज्ञापालन, अनुसरण, सहयोग के **अनुकरण** के रूप में प्रवृत्तियों को देखा जाता है यह बहुत अच्छे ढंग से समझ में आता है यह जन चर्चा का विषय है। संवाद के लिए यह दोनों मुद्दों अच्छे ढंग से सोचने, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करने व्यवहार विधि से विचारों को सम्बद्ध करने में काफी उपकारी हो सकते हैं। तीसरा मुद्दा देखने को मिलता है कि हर मानव संतान शिशुकाल से ही जब से बोलना जानता है तब से जो भी देखा सुना रहता है उसी को बोलने में अभ्यस्त रहता है। इस ढंग से हर मानव संतान बाल्यकाल से ही सत्य वक्ता होना आकलित होता है। जबकि सत्यबोध उसमें रहता नहीं है। शब्दों को बोलना ही बना रहता है। इससे यह भी पता लगता है मानव परंपरा

का दायित्व है कि मानव संतान को सत्य बोध कराएं। इसी के साथ सही कार्य, व्यवहार का प्रयोजन बोध सहित पारंगत बनाने की आवश्यकता है। न्याय बोध हर संतान को कराने का दायित्व परंपरा के पक्ष में ही जाता है। इस ढंग से बच्चों के लिए प्रेरक साहित्यों, कविताओं की रचना करने के लिए ये तीनों सार्थक प्रवृत्तियाँ है मानव में प्रवृतियां प्रयोग और परिक्षण बहुआयामों में होना देखा गया है। ये सब जन चर्चा के लिए बिन्दुएँ हैं।... (**अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर: 37–38**)

- इससे यह पता चलता है मानव संवाद मानव के साथ ही सार्थक होना पाया जाता है। इसी बीच कुछ ऐसी भी घटना देखी गई हैं कि जीव जानवरो के साथ भी मानव अपना सम्भाषण करता है। इस संवाद में स्वयं को बोलना होता है और उसके उत्तर स्वयं ही स्वीकार लेना होता है। इस विधा में ऐसा भी देखा गया है मानव ने जो कहा उसके आधार पर उत्तर स्वीकारा गया। जैसे तोता, मैना, कुत्ता, बिल्ली, गाय, घोड़ा, बाघ, भालू सब के साथ मानव अपने संकेतो को प्रसारित करता है इसके बदले में वह संकेतों के अनुसार **अनुकरण** कर दिया उसे सार्थक मान लेते हैं। मानव के संकेतो को जीव जानवर ग्रहण करते हैं निष्कर्ष निकलता है कि सार्थक संवाद मानव मानव के ही साथ कर पाता है इसे भली प्रकार देखा गया है। दूसरे किसी से सार्थक हो ही नहीं सकता है। मानव में यही विशेषता है समझने और फल परिणाम में एकरूपता आ जाती है यही समाधान है। समाधान के लिए सम्पूर्ण जन चर्चा है। (**अध्याय : 8, पृष्ठ नंबर: 133**)

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- परस्पर पहचानना–निर्वाह करना शाश्वत् नियम है । उपयोगिता सहित पूरक होना शाश्वत् नियम है । पूरकता का तात्पर्य विकास और जागृति में प्रमाण सहित प्रेरक पूरक होने से है । विकास और जागृति में स्व शक्तियों का अर्पण समर्पण है। जड़ प्रकृति में पूरकता किसी एक के अंश को स्वयं स्फूर्त विधि से विस्थापित कर देने के रूप में ही है। मानव में समाधानपूर्वक समृद्ध होने की विधियों को देखा जाता है । यही पुन: जड़ प्रकृति में रचना–विरचना में भी देखने को मिलता है कि रचना विधि में पूरकता, विरचनाएं पुनर्रचना के लिये पूरकता के रूप में प्रस्तुत होना देखा जाता है । इस प्रकार पूरकता जड़ प्रकृति में भी देखने को मिलता है । परस्पर पूरक है इस तथ्य का साक्ष्य पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था विकसित स्थिति में वर्तमान रहना ही है । सभी जीव संसार जीने की आशा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है। ज्ञानावस्था के मानव उसी का **अनुकरण–अनुसरण** करने के जितने भी कार्यकलापों को अपनाया स्वपीड़ा–परपीड़ा, स्वशोषण–परशोषण, स्वयं के साथ वंचना और अन्य के साथ प्रवंचना और इन सबका सारभूत बात स्वयं के साथ समस्या और उसकी पीड़ा से पीड़ित रहना, अन्य को पीड़ित करना रहा । यही भ्रमित मानव परंपरा रूपी समुदायों में देखने को मिला । यही शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था इस दशक तक मानी जा रही है । ये सब समस्याकारी है । समस्या स्वयं पीड़ा के रूप में प्रभावित होना देखा गया । इसका निराकरण जागृति, उसका प्रमाण रूप में समाधान ही है । (**अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर: 69–70**)

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में ''जीने दो जीयो'' वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज शिक्षा–संस्कार के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में **आज्ञापालन–अनुसरण** विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन **अनुकरण** योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही संस्कार–शिक्षा का तात्पर्य है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 178–179**)

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- N o t F o u n d

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- जन्म से मानव संतान **अनुकरण**–अनुसरण करती हुई देखने को मिलती है। यही आज्ञापालन और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है। परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक–वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण शिक्षा–संस्कार सुलभ होता है। ऐसी स्थिति पाने के लिए जागृति विधि से, शिक्षा–संस्कार को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है। फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 82)**
- मानव परम्परा में प्रामाणिकता ही प्रधान वैभव है। जागृति ही इसका मूल स्रोत है। इसका धारक–वाहक केवल मानव है। सम्पूर्ण प्रमाणों की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषणा का आधार भी केवल मानव है। मानव संतानों में प्रयासोदय, शैशव अवस्था में ही देखने को मिलता है। उसी के साथ–साथ आज्ञापालन और सहयोग प्रवृत्ति प्रकारान्तर से सभी मानव संतानों में देखने को मिलती है। इसी के साथ **अनुकरण** कार्यों में प्रमाणित करने का (अथवा **अनुकरित** कार्यों को प्रमाणित करने का) सिलसिला दिखाई पड़ता है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 82)**
- शैशविक (शिशु) मानसिकता के आधार पर हर शिशु न्याय का याचक (अभिभावकों के भरोसे पर), सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक (अनुसरण और **अनुकरण** के आधार पर), और सत्य वक्ता होता है (सुने देखे के आधार पर), इसी से मानव संतान को क्या चाहिए पीछे पीढ़ी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :–

  (1) न्याय प्रदायी क्षमता योग्यता को स्थापित करने की विधि से, न्यायापेक्षा की तृप्ति होना पाया जाता है।

  (2)सही कार्य–व्यवहार को करने की इच्छा की तृप्ति, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन की क्षमता, योग्यता, पात्रता को स्थापित करने के आधार पर संपन्न होता है।

  (3) सत्यवक्ता होने की तृप्ति, अस्तित्व सह–अस्तित्व रूपी सत्य बोध से होती है। अस्तित्व दर्शन से सत्य बोध, जीवन–ज्ञान से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन तथा मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने से, न्याय प्रदायी क्षमता प्रमाणित होती है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 83)**

- गौरव :– निर्विरोध पूर्वक, अंगीकार किए गए **अनुकरण**। **(अध्याय : 5 –(5.21), पृष्ठ नंबर: 133)**

सन्दर्भः मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- आज्ञा–पालन–स्वीकृति सहयोग, **अनुकरण** कार्य के अर्थ में सार्थक है। **(अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 158)**
- **अनुशासन** स्वीकृति को सहयोग **अनुसरण** पूर्वक जागृति के अर्थ में सार्थक है। **(अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 158)**
- **स्वानुशासन** स्वीकृति को जागृति प्रमाणिकता प्रमाण के अर्थ में समाधान है। **(अध्याय : 7, पृष्ठ नंबर: 158)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- Not found

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- Not found

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- Not found

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- मिट्टी का होना रहना देखकर मानव का मानवीय का स्वरुप में रहना बनेगा नहीं। मिट्टी का होना रहना मानव के लिए **अनुकरणीय** नहीं है। जानवर का होना– रहना मानव के लिए **अनुकरणीय** नहीं है। मानव जीव संसार के बाद धरती पर प्रकट हुआ। मानव ने अपनी मौलिकता को अभी तक पहचाना नहीं है। मानव जब अपनी मौलिकता को पहचानेगा तभी मानव चेतना विधि से जिएगा। मानव की मौलिकता " मानवीयता" ही है मानव द्वारा अपनी मौलिकता को पहचान कराने के लिए मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन का प्रस्ताव है (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:187**)
- **समाधान–समृद्धि का अनुकरण**

स्वयं में विश्वास नहीं है तो दूसरे पर विश्वास करना सम्भव नहीं है। आज के प्रचलित तरीके से जीने से आदमी अहमता के आधार पर अकेला हो गया है, जबकि वास्तविक रूप में नियति विधि से आदमी सह–अस्तित्व में है।

प्रश्न: मनुष्य के मनुष्य से जुड़ने की विधि क्या हो?

उत्तर: पहले हम "श्रेष्ठता" के साथ जुड़ते हैं, फ़िर "समानता" के साथ जुड़ते हैं। "यह व्यक्ति मेहनत करके कुछ पाया है" – ऐसी श्रेष्ठता के अनुमान के साथ आप मुझसे जुड़े हो। ज्ञान में समानता, विचार में समानता, और प्रयोजन में समानता – इन तीन जगह में समानता आने पर समानता के साथ जीना बन जाता है। समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने के दो बिन्दु पहचाने – (१) अमीरी–गरीबी में संतुलन, (२) नर–नारी में समानता। मनुष्य के इस तरह व्यवस्था में जीने के लिए उसका "समझदार" होना आवश्यक है – यह मैंने स्वीकारा है। समझदारी के पहले आदमी का व्यवस्था में जीना बनेगा नहीं।

प्रश्न: समझदार होने तक क्या किया जाए?

उत्तर: समझदार होने तक समझदार व्यक्ति का **अनुकरण** किया जा सकता है। एक व्यक्ति अगर समझदार होता है, तो वह कुछ लोगों को appeal होता है। कुछ लोगों को वह appeal नहीं भी होता है। इसके साथ यह भी है, अनुभवशील व्यक्ति किसी न किसी को appeal होता ही है, कि "यह श्रेष्ठ व्यक्ति है।" श्रेष्ठ व्यक्ति का व्यक्तित्व भी appeal होता है। इसी लिए **अनुकरण** की सम्भावना बनती है। जिसको प्रमाण के रूप में स्वीकारते हैं, उसका **अनुकरण** कर सकते हैं। समझदार व्यक्ति को प्रमाण रूप में स्वीकारने की गवाही उसका **अनुकरण** करने में है।

प्रश्न: अध्ययन काल में (समझदार होने तक) बाकी लोगों के साथ संबंधों में क्या किया जाए?

उत्तर: शिष्टता का निर्वाह। मैं भी समझदार नहीं हुआ हूँ, आप भी समझदार नहीं हुए हैं – उस स्थिति में शिष्टता का निर्वाह हो सकता है। दो में से एक व्यक्ति समझदार होता है, तो अध्ययन और **अनुकरण** की सम्भावना बनती है। दोनों के समझदार होने पर समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने की बात बनती है।

प्रश्न: आपकी किस बात का **अनुकरण** करें?

उत्तर: समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने का। और किस बात का **अनुकरण** करोगे? समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना **अनुकरण** योग्य है।

साक्षात्कार–बोध के लिए निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ऐसे प्रयत्न करते हुए हमारी दिनचर्या भी उसके अनुकूल होना आवश्यक है। अपने "करने" का यदि अपने "सोचने" से विरोधाभास रहता है तो साक्षात्कार–बोध नहीं होता। पुनः हम शरीर–मूलक विधि में ही रह जाते हैं। आवेश के साथ अध्ययन नहीं होता। आवेश अध्ययन के लिए अड़चन है।

पहले रास्ता ठीक होगा, तभी तो गम्य–स्थली तक पहुंचेंगे! रास्ते पर चल कर ही गम्य–स्थली तक पहुँचा जा सकता है। रास्ते पर हम चलें नहीं, और हमें गम्य–स्थली मिल जाए, ऐसा कैसे हो? इसके लिए हमें यह जांचने की ज़रूरत है – क्या हमारा "करना" हमारे गम्य–स्थली तक पहुँचने के लिए अवरोध तो पैदा नहीं कर रहा है? हम जैसा सोचते हैं, वैसा करें भी, वैसा कहें भी, वैसे फल–परिणामो को पाएं भी, वैसा प्रमाणित भी करें – यही "गम्य–स्थली" है।

जैसे – हम "नियम" का अध्ययन कर रहे हैं, और हमारा आचरण नियम के विपरीत हो – तो इसमें अंतर्विरोध हो गया। इस अंतर्विरोध के साथ नियम का साक्षात्कार नहीं होता। अध्ययन के साथ "स्वयं का शोध" चलता रहता है। मैं जो समझ रहा हूँ, क्या मैं उसके अनुरूप जी रहा हूँ? इसको पूरा करने के लिए ही "**अनुकरण** विधि" है।

अध्ययन एक "निश्चित साधना" है। अध्ययन रुपी साधना के साथ "समाधान–समृद्धि" के मॉडल का **अनुकरण** किया जा सकता है। यह आदर्शवाद के प्रस्ताव से भिन्न है, जिसमें साधना के साथ सामने कोई मॉडल रहता नहीं है। आदर्शवादी साधना में **अनुकरण** करने की कोई व्यवस्था नहीं है। भौतिकवाद में साधना का कोई मतलब ही नहीं है। भौतिकवाद में उपलब्धि या गम्य–स्थली के रूप में यंत्र है। यंत्र को खरीदो और प्रयोग करो – इतना ही है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (सितम्बर २००९, अमरकंटक) (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:** 195–197)

- प्रश्न: आप कहते हैं – "समझ के करो!" हम जब इस प्रस्ताव को "समझने" के क्रम में हैं, उस दौरान अपने "करने" का क्या किया जाए?

  उत्तर: अनुभव के लिए समझना है। अनुभव के बाद "समझ के करना" ही होता है। "समझने" की अन्तिम–बात अनुभव में है। अनुभव से कम दाम में किसी भी मुद्दे में संतुष्टि नहीं होता – न किसी सम्बन्ध में, न मूल्यों में, न लेन–देन में। तब तक "करने" के लिए बताया है – **अनुकरण**। अपने जीने के डिजाईन में **अनुकरण** विधि से आप परिवर्तन कर सकते हैं। जैसे मैं समाधान–समृद्धि पूर्वक जीता हूँ। आप उसको **अनुकरण** कर सकते हैं। यदि ऐसा कर पाते हैं, तो अपने लिए काफी सहूलियत हो गयी। हर दिन अपने वातावरण में कमियों के प्रति शर्मिंदा होने के स्थान पर आगे अनुभव के लिए हम प्रयत्न कर सकते हैं। ऐसा **अनुकरण** अध्ययन के लिए सहायक है।

  – बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (सितम्बर २००९, अमरकंटक) (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:** 200–201)

- हर मानव–संतान का अपने अभिभावकों को "पोषण–संरक्षण" के अर्थ में पहचानना स्वाभाविक है। जीव–चेतना विधि से पोषण–संरक्षण केवल शरीर से सम्बंधित रहता है। संतान को भाषा से संपन्न बनाना, और प्रचलित–अलंकार से संपन्न कराने का प्रयास बना रहता है। शरीर की सीमा तक ही किया गया पोषण–संरक्षण किसी आयु के बाद नगण्य हो जाता है, या इसकी प्राथमिकताएं बदल जाती हैं, या कुछ दूसरी भौतिक वस्तुओं से जुडी प्राथमिकताएं स्थापित हो जाती हैं। फलस्वरूप अभिभावकों की अपेक्षा के अनुरूप संतान का व्यवहार न हो पाना घटना के रूप में देखने को मिल रहा है। यही पीढ़ियों के बीच की दूरी (generation gap) के रूप में देखने को मिल रहा है। इस घटना का निराकरण होना जरूरी है। यह निराकरण जीव–चेतना विधि से सम्भव नहीं है। जीव–चेतना विधि में जीवों का ही **अनुकरण** करना बनता है।

  हर जीव–जानवर अपनी संतान के जन्म के समय के तुरंत बाद अतिव्यामोह अथवा प्यार–दुलार करता हुआ देखने को मिलता है। पक्षी अपनी चोंच में आहार–तत्व ला कर अपनी संतान की चोंच में देते हैं। मांसाहारी जानवर अपने शिकार को मार कर अपने संतान के सम्मुख रखना देखा जाता है। मांसाहारी और शाकाहारी दोनों तरह के जानवरों में अपनी संतान को स्तन–पान कराना देखा जाता है। गाय अपनी संतान को दूध पिलाते हुए प्रसन्न होता हुआ देखने को मिलता है। बछड़े को ठीक से घास खाता देखकर आश्वस्त होता हुआ देखने को मिलता है।

  मनुष्य द्वारा जीव–चेतना में उपरोक्त का **अनुकरण** करने का स्वरूप है –

  (1) आहार–आवास–अलंकार संबंधी वस्तुओं से पोषण–संरक्षण करना।

  (२) कुछ समय बाद संतानों में इसका वरीयता गौण होना पाया जाता है।

(३) हर आगे की पीढी पिछली पीढी से कुछ "और अच्छे तरीके" से इन वस्तुओं को प्राप्त करना चाहता है, और उनके उपयोग में स्वतंत्रता संपन्न होना चाहता है।

इन तीनो के योगफल में अगली पीढी और पिछली पीढी में दूरियां बढ़ती जा रही हैं।

इस स्थिति का निराकरण मानव–चेतना विधि से यह है –

(१) हर मानव संतान का अभिभावकों के साथ अपने संबंधों में प्रयोजनों को स्मरण में रखते हुए कृतज्ञ होना।

(२) विश्वास पूर्वक संबंधों का निर्वाह करना

(३) तन–मन–धन रुपी अर्थ का उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता के अर्थ में अर्पण–समर्पण के लिए उदार–चित्त रहना

इस तरह – संबंधों का निर्वाह होना ही "न्याय" है। संबंधों का प्रयोजन सिद्ध होना, संबंधों में मूल्यों का निर्वाह होना और उभय–तृप्ति होना ही न्याय की व्याख्या है।

इस प्रकार न्याय और न्याय की व्याख्या इस छोटे से लेख के द्वारा मानव–सम्मुख प्रस्तुत है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २००६, अमरकंटक) (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:** 215)

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2009/11/blog-post_17.html

- मध्यस्थ क्रियाकलाप को मनुष्य–परम्परा के सन्दर्भ में देखें तो – मानव परम्परा में शैशव, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़, और वृद्ध अवस्थाओं के रूप में परिलक्षित है। मानव–परम्परा में "व्यवहार" इसी के साथ सुस्पष्ट होता है। हर मानव–संतान जन्म से ही न्याय का याचक होता है, सत्य वक्ता होता है, और सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक होता है। मानव–संतान का अपने अभिभावकों के साथ "व्यवहार" होता ही है। मानव–संतान स्वाभाविक रूप में अपने अभिभावकों का **अनुसरण–अनुकरण** करता ही है। इस व्यवहार का "प्रयोजन" है – अभिभावकों द्वारा संतान में न्याय–प्रदायी क्षमता स्थापित हो, सत्य का बोध हो, और सही कार्य–व्यवहार करना सिखाया जाए। ऐसा करना अभिभावकों का "दायित्व" है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए अभिभावकों का पहले से उसके "योग्य" बने रहना आवश्यक है। इस प्रकार – हर मानव–सम्बन्ध में, दायित्वों को निर्वाह करने के लिए उसके लिए आवश्यक ज्ञान, विवेक, विज्ञान से संपन्न रहना आवश्यक है। (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:** 231)

- मानव की मनमानी को रोकने के प्रयास करने के लिए दो ध्रुवों में भाई और प्रलोभन का तंत्र प्रस्तुत हुआ इसे कुछ इने–गिने लोग ही स्थापित किए। प्रलोभनात्मक तंत्र विभिन्न देश काल और समुदायों में विभिन्न प्रकार से "धर्म गद्दी" द्वारा प्रस्तुत हुआ। इसमें रहस्यमयी ईश्वर **अनुकरण** न हो सकने वाले महापुरुष, अवतारी पुरुष, ईश्वर के संदेश– वाहक, सिद्ध– पुरुषों को केंद्र में रखकर कर तरने– तारने का प्रलोभनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया साथ में ही "पाप" के प्रति भय और प्रायश्चित का कार्यक्रम दिया गया। इस प्रकार राज्य तंत्र द्वारा सामान्य व्यक्तियों को जान माल की रक्षा करने का आश्वासन और उसके लिए सीमा सुरक्षा करने का कार्यक्रम रहा। इसके साथ ही राज्य तंत्र का स्पष्ट कार्यक्रम रहा। गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। धर्म गद्दी और राजगद्दी का तंत्र यह सोचकर आरंभ हुआ सामान्य व्यक्ति इन तंत्रों की मूल प्रवृत्ति को समझ नहीं पाएगा। बीसवीं शताब्दी तक सर्वाधिक मानव इन तंत्रों की कलई को खुलते हुए देख लिया अथवा इन तंत्रों का प्रयोजन क्या है और क्या हो रहा है यह समझने के योग्य हो गया... **(अध्याय :, पृष्ठ नंबर: 237–238)**
- प्रश्न: अध्ययन के साथ "**अनुकरण**" की क्या भूमिका है?

उत्तर: प्रौढ़ व्यक्तियों को **अनुकरण** करने को कम कहा है। बच्चों के लिए ज्यादा कहा है। एक आयु के बाद व्यक्ति अपने को समझा हुआ मान लेता है। ऐसे व्यक्ति को समझाने के लिए यह मान कर चलते हैं – "थोड़ा समझाने के बाद वे विचार पूर्वक समझ जायेंगे"। उनका "सम्मान" यही है। यही "गंभीरता" भी है। "न्याय" भी यहाँ यही है।

बच्चों में अपने अभिभावकों का **अनुकरण** की बात सर्वाधिक है। भाषा का **अनुकरण** बच्चे करते ही हैं। कार्य, व्यवहार, और रहन–सहन का **अनुकरण** बच्चे करते ही हैं। अभी की स्थिति में "समझदारी" को लेकर अभिभावक अनुकरणीय नहीं बन पा रहे हैं। अभिभावकों को स्वयं समझदारी का पता नहीं है तो बच्चों को क्या **अनुकरण** करायेंगे। इसकी पूर्ति के लिए अभिभावकों को समझदार होना ही पड़ेगा।

किसका **अनुकरण** किया जाए? इसका उत्तर है – "मानवीयता पूर्ण आचरण" को प्रमाणित करने वाले व्यक्ति का (समाधान–समृद्धि पूर्वक जीते हुए व्यक्ति का) का **अनुकरण** किया जाए।

कब तक **अनुकरण** किया जाए? इसका उत्तर है – पूरा समझने तक, पूरा हृदयंगम होने तक, पूरा प्रमाणित होने तक। ऐसे **अनुकरण** करने से अध्ययन में मदद मिलती है।

अनुकरण करने का मतलब है – "मजबूरन" कुछ करना। "सही" को हम सहमति पूर्वक स्वीकार के **अनुकरण** कर सकते हैं। यदि हम "अपराध" के लिए सहमत हो कर उसका **अनुकरण** कर सकते हैं, तो "सही" के लिए सहमत हो कर **अनुकरण** करने में क्या तकलीफ है?
[अक्टूबर २००९, हैदराबाद] **(अध्याय :, पृष्ठ नंबर: 254–255)**

- **अनुकरण**

स्वयं में विश्वास नहीं है तो दूसरे पर विश्वास करना सम्भव नहीं है। आज के प्रचलित तरीके से जीने से आदमी अहमता के आधार पर अकेला हो गया है, जबकि वास्तविक रूप में नियति विधि से आदमी सह–अस्तित्व में है।

प्रश्न: मनुष्य के मनुष्य से जुड़ने की विधि क्या हो?

उत्तर: पहले हम "श्रेष्ठता" के साथ जुड़ते हैं, फ़िर "समानता" के साथ जुड़ते हैं। "यह व्यक्ति मेहनत करके कुछ पाया है" – ऐसी श्रेष्ठता के अनुमान के साथ आप मुझसे जुड़े हो। ज्ञान में समानता, विचार में समानता, और प्रयोजन में समानता – इन तीन जगह में समानता आने पर समानता के साथ जीना बन जाता है। समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने के दो बिन्दु पहचाने – (१) अमीरी–गरीबी में संतुलन, (२) नर–नारी में समानता। मनुष्य के इस तरह व्यवस्था में जीने के लिए उसका "समझदार" होना आवश्यक है – यह मैंने स्वीकारा है। समझदारी के पहले आदमी का व्यवस्था में जीना बनेगा नहीं।

प्रश्न: समझदार होने तक क्या किया जाए?

उत्तर: समझदार होने तक समझदार व्यक्ति का **अनुकरण** किया जा सकता है। एक व्यक्ति अगर समझदार होता है, तो वह कुछ लोगों को appeal होता है। कुछ लोगों को वह appeal नहीं भी होता है। इसके साथ यह भी है, अनुभवशील व्यक्ति किसी न किसी को appeal होता ही है, कि "यह श्रेष्ठ व्यक्ति है।" श्रेष्ठ व्यक्ति का व्यक्तित्व भी appeal होता है। इसी लिए **अनुकरण** की सम्भावना बनती है। जिसको प्रमाण के रूप में स्वीकारते हैं, उसका **अनुकरण** कर सकते हैं। समझदार व्यक्ति को प्रमाण रूप में स्वीकारने की गवाही उसका **अनुकरण** करने में है।

प्रश्न: अध्ययन काल में (समझदार होने तक) बाकी लोगों के साथ संबंधों में क्या किया जाए?

उत्तर: शिष्टता का निर्वाह। मैं भी समझदार नहीं हुआ हूँ, आप भी समझदार नहीं हुए हैं – उस स्थिति में शिष्टता का निर्वाह हो सकता है। दो में से एक व्यक्ति समझदार होता है, तो अध्ययन और **अनुकरण** की सम्भावना बनती है। दोनों के समझदार होने पर समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने की बात बनती है।

प्रश्न: आपकी किस बात का **अनुकरण** करें?

उत्तर: समाधान–समृद्धि पूर्वक जीने का। और किस बात का **अनुकरण** करोगे? समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना **अनुकरण** योग्य है।

साक्षात्कार–बोध के लिए निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ऐसे प्रयत्न करते हुए हमारी दिनचर्या भी उसके अनुकूल होना आवश्यक है। अपने "करने" का यदि अपने "सोचने" से विरोधाभास रहता है तो साक्षात्कार–बोध नहीं होता। पुनः हम शरीर–मूलक विधि में ही रह जाते हैं। आवेश के साथ अध्ययन नहीं होता। आवेश अध्ययन के लिए अड़चन है।

पहले रास्ता ठीक होगा, तभी तो गम्य–स्थली तक पहुंचेंगे! रास्ते पर चल कर ही गम्य–स्थली तक पहुँचा जा सकता है। रास्ते पर हम चलें नहीं, और हमें गम्य–स्थली मिल जाए, ऐसा कैसे हो? इसके लिए हमें यह जांचने की ज़रूरत है – क्या हमारा "करना" हमारे गम्य–स्थली तक पहुँचने के लिए अवरोध तो पैदा नहीं कर रहा है? हम जैसा सोचते हैं, वैसा करें भी, वैसा कहें भी, वैसे फल–परिणामो को पाएं भी, वैसा प्रमाणित भी करें – यही "गम्य–स्थली" है।

जैसे – हम "नियम" का अध्ययन कर रहे हैं, और हमारा आचरण नियम के विपरीत हो – तो इसमें अंतर्विरोध हो गया। इस अंतर्विरोध के साथ नियम का साक्षात्कार नहीं होता। अध्ययन के साथ "स्वयं का शोध" चलता रहता है। मैं जो समझ रहा हूँ, क्या मैं उसके अनुरूप जी रहा हूँ? इसको पूरा करने के लिए ही "**अनुकरण** विधि" है।

अध्ययन एक "निश्चित साधना" है। अध्ययन रुपी साधना के साथ "समाधान–समृद्धि" के मॉडल का **अनुकरण** किया जा सकता है। यह आदर्शवाद के प्रस्ताव से भिन्न है, जिसमें साधना के साथ सामने कोई मॉडल रहता नहीं है। आदर्शवादी साधना में **अनुकरण** करने की कोई व्यवस्था नहीं है। भौतिकवाद में साधना का कोई मतलब ही नहीं है। भौतिकवाद में उपलब्धि या गम्य–स्थली के रूप में यंत्र है। यंत्र को खरीदो और प्रयोग करो – इतना ही है।

[सितम्बर २००९, अमरकंटक]

प्रश्न: आप कहते हैं – "समझ के करो!" हम जब इस प्रस्ताव को "समझने" के क्रम में हैं, उस दौरान अपने "करने" का क्या किया जाए?

उत्तर: अनुभव के लिए समझना है। अनुभव के बाद "समझ के करना" ही होता है। "समझने" की अन्तिम–बात अनुभव में है। अनुभव से कम दाम में किसी भी मुद्दे में संतुष्टि नहीं होता – न किसी सम्बन्ध में, न मूल्यों में, न लेन–देन में। तब तक "करने" के लिए बताया है – **अनुकरण**। अपने जीने के डिजाईन में **अनुकरण** विधि से आप परिवर्तन कर सकते हैं। जैसे मैं समाधान–समृद्धि पूर्वक जीता हूँ। आप उसको **अनुकरण** कर सकते हैं। यदि ऐसा कर पाते हैं, तो अपने लिए काफी सहूलियत हो गयी। हर दिन अपने वातावरण में कमियों के प्रति शर्मिंदा होने के स्थान पर आगे अनुभव के लिए हम प्रयत्न कर सकते हैं। ऐसा **अनुकरण** अध्ययन के लिए सहायक है।

[सितम्बर २००९, अमरकंटक]

प्रश्न: अध्ययन के साथ "**अनुकरण**" की क्या भूमिका है?

उत्तर: प्रौढ़ व्यक्तियों को **अनुकरण** करने को कम कहा है। बच्चों के लिए ज्यादा कहा है। एक आयु के बाद व्यक्ति अपने को समझा हुआ मान लेता है। ऐसे व्यक्ति को समझाने के लिए यह मान कर चलते हैं – "थोड़ा समझाने के बाद वे विचार पूर्वक समझ जायेंगे"। उनका "सम्मान" यही है। यही "गंभीरता" भी है। "न्याय" भी यहाँ यही है।

बच्चों में अपने अभिभावकों का **अनुकरण** की बात सर्वाधिक है। भाषा का **अनुकरण** बच्चे करते ही हैं। कार्य, व्यवहार, और रहन–सहन का **अनुकरण** बच्चे करते ही हैं। अभी की स्थिति में "समझदारी" को लेकर अभिभावक अनुकरणीय नहीं बन पा रहे हैं। अभिभावकों को स्वयं समझदारी का पता नहीं है तो बच्चों को क्या **अनुकरण** करायेंगे। इसकी पूर्ति के लिए अभिभावकों को समझदार होना ही पड़ेगा।

किसका **अनुकरण** किया जाए? इसका उत्तर है – "मानवीयता पूर्ण आचरण" को प्रमाणित करने वाले व्यक्ति का (समाधान–समृद्धि पूर्वक जीते हुए व्यक्ति का) का **अनुकरण** किया जाए।

कब तक **अनुकरण** किया जाए? इसका उत्तर है – पूरा समझने तक, पूरा हृदयंगम होने तक, पूरा प्रमाणित होने तक। ऐसे **अनुकरण** करने से अध्ययन में मदद मिलती है।

अनुकरण करने का मतलब है – "मजबूरन" कुछ करना। "सही" को हम सहमति पूर्वक स्वीकार के **अनुकरण** कर सकते हैं। यदि हम "अपराध" के लिए सहमत हो कर उसका **अनुकरण** कर सकते हैं, तो "सही" के लिए सहमत हो कर **अनुकरण** करने में क्या तकलीफ है?

[अक्टूबर २००९, हैदराबाद]

प्रश्न: "समाधान का **अनुकरण**" से क्या आशय है?

उत्तर: शब्द या लेख के आधार पर **अनुकरण** – पठन के रूप में। उसके बाद अर्थ के आधार पर **अनुकरण** – अध्ययन के रूप में। अध्ययन के फलन में अनुभव के आधार पर स्वत्व हो जाता है। **अनुकरण** का विधि और प्रयोजन यही है।

वेदज्ञों के परिवार में जन्मने के बाद मैंने उनका **अनुकरण** किया, उनका भाषा प्रयोग किया, उसके बाद उसके अर्थ में गया। अर्थ में गया तो सारा वितंडावाद हो गया। अनुभव तो दूर रह गया! इस कष्ट को मिटाने के लिए अनुसन्धान किया, जिससे मध्यस्थ–दर्शन उपलब्ध हुआ।

अब मध्यस्थ–दर्शन में पठन, अध्ययन, और अनुभव का क्रम सध गया। अनुभव–मूलक विधि से जीने वाले का **अनुकरण** करने से शब्द के अर्थ में जाना बन जाता है। शब्द के अर्थ में जाने के बाद अनुभव में जीना बन जाता है। अनुभव में जीना बनता है तो प्रमाण होता ही है।

अध्ययन को छोड़ कर केवल **अनुकरण** करने से कुछ समय तक तृप्ति है, पर तृप्ति की निरंतरता नहीं बनती। यही अध्ययन और अनुभव की आवश्यकता है।

सूचना को दोहराने से अर्थ की ओर ध्यान जाता ही है। अर्थ को जब शोध करते हैं तो अपना स्वत्व होने की जगह में पहुँच ही जाते हैं। अध्ययन को आत्मसात करने की विधि है – **अनुकरण**।

[अप्रैल २०१०, अमरकंटक]

अनुमान से अनुभव तक पहुँचते हैं। अनुभव होता है, तो अनुमान सही है। अनुभव नहीं होता, तो अनुमान सही नहीं है। अनुमान करने की ताकत कल्पनाशीलता के स्वरूप में हर व्यक्ति के पास है। उसके सहारे अनुभव तक पहुँच सकते हैं। जीने में जो प्रमाणित हो सके, वह अनुमान सही है। जीना प्रमाण ही होता है, अनुमान नहीं होता। जीने के अलावा और किसी चीज को प्रमाण कैसे माना जाए? "मैं प्रमाणित स्वरूप में जी रहा हूँ" – इस जगह आपको आना है।

अनुक्रम से अनुभव होता है। जो कुछ भी होना हुआ है, और जो कुछ भी होना है – वह अनुक्रम है। अनुक्रम का अर्थ है – एक से एक जुडी हुई श्रंखला विधि। इस विधि को पूरा समझने से अनुमान होता है। अनुमान होने के बाद अनुभव होता है। अनुभव होने के बाद प्रयोजन सिद्ध होता है, प्रमाण होता है। मानव के सुधरने के लिए, सुसज्ज़ित होने के लिए यही विधि है।

अध्ययन में यदि मन लगता है तो अनुभव हो जाएगा।

अध्ययन में मन नहीं लगता है तो अनुभव नहीं होगा।

अनुभव के पहले प्रमाण नहीं है। अनुभव के पहले **अनुकरण**–अनुसरण विधि से "अच्छा लगने" की स्थिति में आ जाते हैं, "अच्छा होना" नहीं होता। केवल अनुसरण–**अनुकरण** पर्याप्त नहीं है। जीने में प्रमाणित होने पर ही "अच्छा होना" होता है।

[अप्रैल २०१०, अमरकंटक]

मैंने जब अध्ययन किया तो मेरे पास अस्तित्व को पढने के लिए पहले से सूचना उपलब्ध नहीं था। जो मैंने समझा उसकी सूचना आपके अध्ययन के लिए मैंने प्रस्तुत किया है। मैंने बिना सूचना के ही जो अध्ययन कर लिया, उसको सूचना के साथ अध्ययन करके अनुभव करने में आपको क्या तकलीफ है?

प्रश्नः हम अभी अध्ययन–क्रम में हैं। जितना समझे हैं, उसको **अनुकरण**–अनुसरण पूर्वक जीने का प्रयास भी कर रहे हैं। फिर भी उत्साह कभी कभी ऊपर–नीचे होता रहता है। उत्साह को कैसे बनाए रखें?

उत्तरः अनुभव के लिए उत्साह को बनाए रखिये – सूचना के आधार पर। आगे चलकर इसको अनुभव करेंगे... इस तरह। सौ हथौड़े की चोटों के बाद एक विशाल पत्थर टूटता है। ९९ चोटें रही, तभी १००वी चोट पर पत्थर टूटता है। जितनी सीमा तक समझ को जी पाते हैं, उससे खुशी भी मिलती है – जिससे आगे के लिए उत्साह बना रहता है। प्रमाण अनुभव के बाद ही है।

विरक्ति विधि से मैंने साधना किया था। साधना–काल में हम हर समय खुश–हाली ही मनाते रहे। कभी अभावग्रस्त या पीड़ा–ग्रस्त नहीं हुए। जबकि साधना में हम सूखते ही रहे! आपके लिए अध्ययन का मार्ग कोई विरक्ति–विधि नहीं है। इसीलिये मैं मानता हूँ, सर्व–मानव के लिए सुलभ अध्ययन–विधि ही है।

[अप्रैल २०१०, अमरकंटक]

प्रश्नः अध्ययन विधि में "**अनुकरण**" की क्या भूमिका है?

उत्तरः **अनुकरण** नहीं है तो अध्ययन किसका करोगे? कोई जागृत स्वरूप में जीता है, तो उसको देख करके अध्ययन होता है। वही **अनुकरण** है। दूसरी विधि से अध्ययन होता नहीं है। जागृत होने के लिए दूसरी विधि अनुसंधान ही है।

प्रश्नः आपके जागृत स्वरूप में जीने को देख कर मुझ में वैसा जीने की इच्छा बनती है। क्या वह अध्ययन है?

उत्तरः मेरे जीने को देख कर पहले आप में वैसा जीने की "कल्पना" दौड़ती है, आपका "कार्य" नहीं दौड़ता। आपका कार्य उसके अनुसार दौड़ने से फिर ठीक हो जाता है। इच्छा भर होना "व्यक्तिवाद" है। कार्य भर होना "समाजवाद" है। अनुभव होना और उसके अनुसार इच्छा और कार्य होना "सहअस्तित्ववाद" है।

[अनुभव शिविर, २०१३ अमरकंटक]

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2017/03/blog-post_18.html

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- सह–अस्तित्व में जो कुछ भी प्रवृत्तियां हैं, सम्भावना है, प्रक्रिया है – उसको मनुष्य **अनुकरण** ही कर सकता है। सह–अस्तित्व में जो प्रवृत्तियां, सम्भावना, और प्रक्रिया नहीं है – उसको मनुष्य प्रकट कर ही नहीं सकता। यही मनुष्य के लिए नियति–विधि से जीने का उपाय है। (**अध्याय : 2.1, पृष्ठ नंबर:144**)
- स्थिति–पूर्ण सत्ता में संपृक्त स्थिति–शील प्रकृति पूर्णता की ओर प्रकटन–शील है। प्रकृति द्वारा व्यापकता के **अनुकरण** का प्रमाण विविधता से मुक्ति पाना है। व्यापकता में कोई विविधता नहीं है। सबके साथ समान रूप से पारगामी है, सबके साथ समान रूप से पारदर्शी है, और व्यापक है ही। पदार्थ–अवस्था में जातीय विविधता दिखती है। प्राण–अवस्था में भी जातीय विविधता है। जीव–अवस्था में भी जातीय विविधता है। ज्ञान–अवस्था या मानव में जातीय विविधता नहीं है। मानव जाति एक है। मानव जाति में जागृति पूर्वक सह–अस्तित्व पूरा व्यक्त होता है। इसको "सम्पूर्णता" नाम दिया। मानव जाति एक होना, मानव धर्म एक होना, हर व्यक्ति और हर परिवार का व्यवस्था में भागीदार होना। सर्व–मानव के लिए ज्ञान यही है। इस तरह सम्पूर्णता में प्रमाण है। सम्पूर्णता सह–अस्तित्व ही है। (**अध्याय :2.1, पृष्ठ नंबर: 180**)
- आपने हमको बताया: आपने साधना पूर्वक "समाधि" की स्थिति प्राप्त की। समाधि में आपने कहा – आपको ज्ञान नहीं हुआ। आपने फ़िर "संयम" करने का अपना डिजाईन बनाया। जिसके फलन में आपने एक परमाणु से लेकर मनुष्य तक अस्तित्व में व्यवस्था के स्वरूप को देखा, उसका अध्ययन किया। उसका आपने हमको वर्णन भी किया। क्या हम जो अध्ययन कर रहे हैं, उससे हमको वही सब दिखेगा?

  (**तदाकार होने की स्थिति**)

  उत्तर: मैंने जो समाधि संयम में देखा वह आपके पास सूचना है। सूचना होना भर आपके लिए पर्याप्त नहीं है। इस सूचना से आपको तदाकार होने तक जाना है। तदाकार होने पर आपको वही दिखेगा जो मुझे दिखा। अनुभव की रोशनी में स्मरण पूर्वक प्रयत्न करने से हम तदाकार होने की स्थिति में पहुँचते हैं। पठन (श्रवण) के बाद 'मनन' विधि में यह होता है। 'मनन प्रक्रिया' में न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि यह दुल्हन होता है। 'वस्तु' का शोध होता है, स्व निरीक्षण होता है, मानवीयता पूर्ण आचरण के **अनुकरण** में जीते हैं। 'मनन' में/द्वारा हमारी प्राथमिकता स्थिर होता है। इच्छा, विचार, आशा, न्याय, धर्म, सत्य रूपी वांछित वस्तु में संयत होते हैं। इसके पश्चात 'श्रवण' के सार में चित्त, वृत्ति केंद्रीकृत होना/ होता है इस विधि से हमारा प्राथमिकता होने से 'तदाकार' की स्थिति तक **पहुँच** जाते हैं। (**अध्याय :3.1, पृष्ठ नंबर: 281**)

* प्रश्न: समझने के क्रम में क्या discipline का कोई रोल नहीं है?

  उत्तर: सही जीने का कोई स्वरूप हो, उस ढंग से हम जीना शुरू कर देते हैं, तो उस ढंग से विचारने की ओर भी जाते हैं। सही जीने का स्वरूप वही व्यक्ति होगा जो सही को समझा होगा। सही जीने का स्वरूप है – समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना। समझे हुए (अनुभव सम्पन्न जागृत मानव चेतना) व्यक्ति के जीने के स्वरूप का हम **अनुकरण–अनुसरण** करते हैं, उसके साथ शब्द को सुनते हैं, शब्द से अर्थ की ओर जाते हैं। **अनुकरण–अनुसरण** करना अध्ययन के लिए प्रेरणा है। अर्थ की ओर जाने पर उसके स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु से तदाकार होने का प्रवृत्ति जीवन में रहता ही है। यही 'मनन' प्रक्रिया है। तदाकार होने पर साक्षात्कार हो गया, बोध हो गया, अनुभव हो गया। अनुभव होने पर हम तद्रूप हो गए। तद्रूपता प्रमाण है। **(अध्याय : 3.1, पृष्ठ नंबर: 283–284)**

* प्रश्न– बोध और अनुभव में क्या दूरी है?

  उत्तर– दूरी कुछ नहीं है बोध होने के बाद अनुभव होता ही है। क्रमिक रूप से साक्षात्कार होकर बोध होता है साक्षात्कार बोध क्रम में **अनुकरण** रूप में आचरण संयत होने लगता है। बुद्धि में "अवधारणा बोध" के अनंतर अनुभव होता है। यह सब सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में होता है हो रहा है और होता ही रहेगा यह अनुभव की महिमा है अनुभव के बिना ऐसा कहना बनता नहीं है। अनुभव से ही प्रमाण होता है। अनुभव का ही प्रमाण होता है। अनुभवमूलक विधि से जीने पर हम प्रमाण के अधिकारी बनते हैं जिससे न्याय, धर्म, सत्य जीने में प्रमाणित होता है।... **(अध्याय :3.1, पृष्ठ नंबर: 293)**

* अनुभव के पहले प्रमाण नहीं है। अनुभव के पहले अनुकरण अनुकरण विधि से "अच्छा लगने" की स्थिति में आ जाते हैं, "अच्छा होना" नहीं होता। केवल अनुसरण अनुकरण पर्याप्त नहीं है। जीने में प्रमाणित होने पर ही "अच्छा होना" होता है। **(अध्याय :3.1, पृष्ठ नंबर: 294)**

* **समाधान का अनुकरण**

  प्रश्न: "समाधान का अनुकरण" से क्या आशय है?

  उत्तर: शब्द या लेख के आधार पर अनुकरण – पठन के रूप में। उसके बाद अर्थ के आधार पर अनुकरण – अध्ययन के रूप में। अध्ययन के फलन में अनुभव के आधार पर स्वत्व हो जाता है। अनुकरण का विधि और प्रयोजन यही है।

  वेदज्ञों के परिवार में जन्मने के बाद मैंने उनका अनुकरण किया, उनका भाषा प्रयोग किया, उसके बाद उसके अर्थ में गया। अर्थ में गया तो सारा वितंडावाद हो गया। अनुभव तो दूर रह गया! इस कष्ट को मिटाने के लिए अनुसन्धान किया, जिससे मध्यस्थ–दर्शन उपलब्ध हुआ।

अब मध्यस्थ–दर्शन में पठन, अध्ययन, और अनुभव का क्रम सध गया। अनुभव–मूलक विधि से जीने वाले का अनुकरण करने से शब्द के अर्थ में जाना बन जाता है। शब्द के अर्थ में जाने के बाद अनुभव में जीना बन जाता है। अनुभव में जीना बनता है तो प्रमाण होता ही है।

अध्ययन को छोड़ कर केवल अनुकरण करने से कुछ समय तक तृप्ति है, पर तृप्ति की निरंतरता नहीं बनती। यही अध्ययन और अनुभव की आवश्यकता है।

सूचना को दोहराने से अर्थ की ओर ध्यान जाता ही है। अर्थ को जब शोध करते हैं तो अपना स्वत्व होने की जगह में पहुँच ही जाते हैं। अध्ययन को आत्मसात करने की विधि है – अनुकरण।

प्रश्न: "सूचना को दोहराना" अकेले में या परस्परता में?

उत्तर: किसी के साथ हम बोलते ही हैं। किसी के साथ हम शब्दों को बोले नहीं, ऐसा कोई आदमी होता नहीं है। एक गूंगा भी दूसरों के साथ अपने को अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। अभिव्यक्ति अध्ययन–क्रम में सबसे सशक्त भाग है। पहले पढ़ कर विचारों का आदान–प्रदान करके अच्छा लगता है। फिर उससे यह निकलता ही है – इसको समझ के जीना कितना अच्छा लगेगा? हर मनुष्य में कल्पनाशीलता–कर्म–स्वतंत्रता है, इसलिए यह स्वयं–स्फूर्त होता है।

– बाबा श्री नागराज शर्मा के साथ संवाद पर आधारित (अप्रैल २०१०, अमरकंटक) **(अध्याय : 3.1, पृष्ठ नंबर:307–309)**

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2010/06/blog-post_6206.html

- हमें जो पता लगता है “हम समझे तो हैं, पर प्रमाणित नहीं है।” इस खाई को भरने की विधि एक ही है– मानवीयता पूर्ण आचरण को वैचारिक रूप में स्वयं में जोड़ पाना। इतना सूक्ष्म है यह! वैचारिक रूप में “मानवीयता पूर्ण आचरण” को इस प्रकार जोड़ने से हम तत्काल इमानदारी के पक्ष में हो जाते हैं। उसका विधि यही है सुविधा संग्रह लक्ष्य के स्थान पर समाधान समृद्धि लक्ष्य को स्वयं में स्थापित कर लेना। जहाँ “मानवीयता पूर्ण आचरण” विचार में जुड़ता है हम उसे प्रमाणित करने लगते हैं। मानवीयता पूर्ण आचरण की **अनुकरण**, स्वीकृति एवं अभ्यास से ही अध्ययन सफल होता है। **(अध्याय : 3.2, पृष्ठ नंबर: 339)**
- प्रश्न: अनुसंधान पूर्वक आपके समझने की प्रक्रिया और अध्ययन पूर्वक हमारे समझने की प्रक्रिया में क्या भेद है?
उत्तर: प्रक्रिया तो दोनों में अध्ययन ही है। मैंने सीधा प्रकृति में अध्ययन किया आप प्रकृति में जिसने अध्ययन करके अनुभव किया उसका **अनुकरण** करके अध्ययन कर रहे हैं। **(अध्याय :4, पृष्ठ नंबर: 353)**

अनुसरण

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 19/04/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 29/10/2019

अनुसरण की परिभाषा

- जिस सक्रियता में अनुशासित होने की क्षमता समाहित है उसे **अनुसरण** संज्ञा है।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृष्ठ नंबर: 15)

अनुक्रमणिका

“अनुसरण” को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1.	मानव व्यवहार दर्शन	३६
2.	मानव कर्म दर्शन	३९
3.	मानव अभ्यास दर्शन	४१
4.	मानव अनुभव दर्शन	४६
5.	समाधानात्मक भौतिकवाद	४७
6.	व्यवहारात्मक जनवाद	४८
7.	अनुभवात्मक अध्यात्मवाद	५०
8.	व्यवहारवादी समाजशास्त्र	५१
9.	आवर्तनशील अर्थशास्त्र	५३
10.	मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान	५४
11.	मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या	५५
12.	जीवन विद्या –एक परिचय	५६
13.	विकल्प	५६
14.	जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु	५६
15.	मानवीय आचरण सूत्र	५६
16.	संवाद – भाग १	५७
17.	संवाद – भाग २	५९

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(**संस्करण**: 2011, **मुद्रण**: 2015)

- शिष्टता की वैविध्यता, सम्पत्ति एवं स्वत्व की विस्तार–प्रवृत्ति की उत्कटता के अनुसार मानव में सीमाएं दृष्टव्य हैं। मानव में प्रत्येक सीमित संगठन, प्रधानतः भय–मुक्ति होने के उद्देश्य से हुआ है । सर्वप्रथम मानव ने जीव–भय एवं प्राकृतिक भय से मुक्त होने के लिये साधारण (आहार, आवास, अलंकार) एवं हिंसक साधनों का आविष्कार किया है । इन हिंसक साधनों से मानव की परस्परता में अर्थात् परस्पर दो मानव, परिवार एवं वर्ग एवं समुदायों के संघर्ष में प्रयुक्त होना ही युद्ध है । इसके मूल में प्रधानतः संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की वैविध्यता है । साथ ही उसके **अनुसरण** में स्वत्व एवं सम्पत्ति के विस्तारीकरण की प्रवृत्ति भी है । यही केन्द्र–बिन्दु है । मानव, मानव के साथ संघर्ष करने के लिये, प्रत्येक संगठित इकाई अर्थात् परिवार एवं वर्ग अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानने के आधार पर स्वत्व और सम्पत्तिकरण के विस्तारीकरण को न्याय–सम्मत स्वीकार लेता है, फलतः उसी का प्रतिपादन करता है और आचरण एवं व्यवहार में प्रकट करता है । यही स्थिति प्रत्येक सीमा के साथ है ।

  इस ऐतिहासिक तथ्य से ज्ञात होता है कि प्रत्येक सामुदायिक इकाई के मूल में सार्वभौमिकता को पाने का शुभ संकल्प है । उसे चरितार्थ अथवा सफल बनाने का उपाय सुलभ हुआ है, जो ''मध्यस्थ दर्शन" के रूप में मुखरित हुआ है । यह मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, विधि एवं व्यवस्था के लिए प्रमाणों के आधार पर वर्तमान बिन्दु में दिशा को स्पष्ट करता है । (**लेखकीय से**)

- ज्ञानावस्था की एक निर्भ्रांत इकाई अनेक भ्रान्ताभ्रान्त तथा भ्रान्त इकाईयों के लिए **अनुसरण** योग्य तथा समाधान की ओर प्रेरक सिद्ध हुई है । (**अध्याय** :5, **पृष्ठ नंबर**: 49)
- सर्वमानव सुख, समाधान एवं सदुपयोगिता को सिद्ध कराने वाली व्यवस्था एवं व्यवहार का समर्थन तथा **अनुसरण** ही सुखी होने का एकमात्र विधि है । (**अध्याय** :6, **पृष्ठ नंबर**: 56)
- कार्य :– विचार पक्ष के आकार का अनुकरण करने के लिये जड़ पक्ष पर योगदान (**अनुसरण**) की कार्य संज्ञा है । (**संकरण**: **प्रथम**, **मुद्रण**: 2012, **अध्याय** : 6, **पृष्ठ नंबर**:)
- परस्पर समाधान के अर्थ में जीवन क्रिया व संकेत ग्रहण सहित **अनुसरण** क्रिया ही 'एकसूत्रता' है । (**अध्याय** :, **पृष्ठ नंबर**: 70)
- मानव परिवार, समाज, राष्ट्र एवं लोक क्रम से अन्योन्यश्रित है जिनका अध्ययन तथा **अनुसरण** करने का अवसर समस्त मानव को प्राप्त है। (**अध्याय** : 13, **पृष्ठ नंबर**: 88)
- मानव परिवार, समाज, राष्ट्र तथा लोक, प्राप्त अवसर तथा **अनुसरण** क्रिया के आवश्यकीय नियमों के पालन द्वारा ही सफल हुए हैं। इसके विपरीत असफल हुए हैं। (**अध्याय** : 13, **पृष्ठ नंबर**: 88)

- एक का अनेक द्वारा तथा अनेक का एक द्वारा **अनुसरण** एवं अनुकूलता केवल न्याय पूर्वक किए गए व्यवहार से ही सफल है, अन्यथा असफल है। (**अध्याय : 15, पृष्ठ नंबर: 108**)
- उपरोक्तानुसार ही एक व्यक्ति द्वारा कुटुंब के, एक कुटुंब द्वारा समाज के, एक समाज द्वारा राष्ट्र के, एक राष्ट्र द्वारा विश्व के साथ न्यायसम्मत व्यवहार तथा **अनुसरण**–प्रणाली है। **अनुसरण**–प्रणाली से स्वर्गीयता का अनुभव जागृत मानव परंपरा में ही है। इसके विपरीत क्रम से नारकीयता है। यह इसलिए भी सिद्ध है कि गुरुमूल्य को लघुमूल्य में नहीं समाहित किया जा सकता। (**अध्याय :15, पृष्ठ नंबर: 108**)
- भाई–बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है. पहचान होते ही परस्परता में सच्चाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत–मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में आज्ञापालन सहयोग और **अनुसरण** जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है. यही मित्रों के साथ भी होता है. जब भाई–बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ आज्ञापालन सम्बन्ध रहता ही है. **अनुसरण** भी इन्ही दो पक्षों से जुड़ा रहता है. मूल्यांकन में यह सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है. जहां तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की सम्भावना बनी ही रहती है।... (**अध्याय : 16 (i), पृष्ठ नंबर: 124–125**)
- राज्य–नीति का लक्ष्य तन, मन, एवं धन की सुरक्षा है तथा इसके लिए विधि तथा व्यवस्था प्रदान करना है. इस क्रम में यह जान लेना आवश्यक है कि बौद्धिक नियम की अवधारणाएं ही क्रम से व्यवहार काल में प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक नियमों का **अनुसरण** करती हैं, जिससे जागृति प्रमाणित होती है. यहाँ हम बौद्धिक, सांस्कृतिक, तथा प्राकृतिक क्षेत्र में किये जा रहे व्यवहार की विधि व निषेध पक्ष का अध्ययन करेंगे. (**अध्याय :16 (ii), पृष्ठ नंबर: 132**)
- वृत्ति के आश्रय में मन, चित्त के आश्रय में वृत्ति, बुद्धि के आश्रय में चित्त का न होना ही मन और वृत्ति, वृत्ति और चित्त, चित्त और बुद्धि के बीच साविपरीतता है, यही बौद्धिक रहस्य है।

  उपरोक्त साविपरीतता को समाप्त करने तथा बौद्धिक रहस्यता अथवा अहंकार का उन्मूलन करने के लिए निश्चित प्रक्रिया है। इस निश्चित प्रक्रिया के अनुसार अभ्यास एवं व्यवहार से ही बौद्धिक रहस्यता का उन्मूलन होता है। ऐसी प्रक्रिया दो प्रकार से गण्य है:–

  एक– अनुसंधान।

  दो– **अनुसरण, अनुकरण**, अध्ययन। (**अध्याय :17, पृष्ठ नंबर: 141–142**)

- दो– **अनुसरण**, **अनुकरण**, अध्ययन :– इसका विषद विश्लेषण पूर्व के अध्यायों में यथा–स्थान किया है, जिसका सारभूत कार्यक्रम है. यह जागृत परंपरागत विधि से सार्थक होता है.

  (१)न्यायपूर्ण व्यवहार का **अनुकरण** या **अनुसरण** करना.

  (२)समाधान पूर्ण (धर्म पूर्ण) विचार में प्रसक्त (प्रवृत्त) होना.

  उपरोक्त दोनों कार्यक्रमों की दृढ़ता एवं निष्ठा की अपेक्षा में सत्यता की अनुभूति का अधिकार जागृति पूर्वक प्राप्त होता है, फलस्वरूप बुद्धि आप्लावित हो जाती है.

  उपरोक्तानुसार जब साधक मानवीयतापूर्ण व्यवहार एवं धर्म पूर्ण विचार में प्रतिष्ठित हो जाता है तब मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि की क्रियाएँ किस प्रकार से संपादित होती हैं, इसका अनुभूतिपरक वर्णन नीचे दिया गया है.... **(अध्याय : 17, पृष्ठ नंबर: 143)**

- विकसित का एकसूत्रवत **अनुकरण** तथा **अनुसरण** पूर्वक स्वयं स्फूर्त होना ही और जागृति को प्रमाणित करना ही सर्वमानव का वैभव है। **(अध्याय : 17, पृष्ठ नंबर: 151)**
- मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) का अध्ययन अनुसंधानपूर्वक प्रस्तुत मध्यस्थ–दर्शन का शोधपूर्वक अध्ययन **अनुसरण** ही एकसूत्रता है. एकसूत्रता न्याय, धर्म तथा सत्यतापूर्ण व्यवहार, विचार एवं अनुभूति ही है. **(अध्याय : 18, पृष्ठ नंबर: 153–154)**
- समाधान :– प्रत्येक क्रिया के लिए परिशिष्ट एवं परिमार्जित पद्धति के **अनुसरण** में स्थिति सत्य, वस्तु गत सत्य एवं वस्तु स्थिति का ज्ञान तथा सही, क्यों, कैसे का उत्तर, समाधान । **(अध्याय :18 , पृष्ठ नंबर: 158)**
- संवर्तन :– परिमार्जन एवं परिपूर्णता के लिये प्राप्त संकेत के **अनुसरण** क्रिया की सम्वर्तन संज्ञा है । **(अध्याय : 18, पृष्ठ नंबर: 159)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(**संस्करण**: 2010, **मुद्रण**:2017)

- प्रत्येक कर्म में कर्ता, कारण, उद्देश्य, फल एवं प्रभाव ये पाँच अंग समाहित रहते हैं। आवश्यकता पूर्ति के लिए ही सम्पर्क एवं संबंध है। आवश्यकता ही इच्छा है, जिसके मूल में समाज, सामाजिकता, उसका पालन, परिपालन, आचरण, **अनुसरण** एवं अनुशीलन समाया रहता है।

  दर्शन पूर्वक आवश्यकताओं का निर्धारण एवं **अनुसरण** करने की स्वीकृति के लिए की गयी सम्पूर्ण क्रियाएं इच्छा के रूप में होती हैं जो चैतन्य क्रिया में पाये जाने वाले संचेतना का प्रकटन है। (**अध्याय** : 1, **पृष्ठ नंबर**: 2)

- सुकर्म–जन्य–मति मान्य (सामाजिक) कर्म, आचरण एवं कार्य–व्यवहार के रूप में; सुमति–सुकर्म (समाज के लिये आवश्यकीय कर्म) आचरण एवं कार्य व्यवहार के रूप में अनुमति अनुपम कर्म (**अनुसरण** योग्य), आचरण एवं कार्य व्यवहार के रूप में है। (**अध्याय** :1, **पृष्ठ नंबर**: 6)
- आवश्यकीय नियमों का ज्ञान व **अनुसरण** निर्णय उसके सदुपयोग से, सदुपयोग का निर्णय विकास एवं जागृति से, विकास एवं जागृति का निर्णय बौद्धिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक नियमों के समझ व पालन से स्पष्ट होता है। मानव के लिए अपने विकास एवं जागृति क्रम श्रृंखला को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आवश्यकीय नियमों का **अनुसरण** एक अनिवार्य प्रक्रिया है। यही मानव–जीवन, जागृति क्रम, जागृत जीवन के कार्यक्रम का प्रत्यक्ष रूप भी है। इसलिये –

  सांस्कृतिक मूल्यों का अवगाहन एवं निर्वहन व मूल्यांकन ही मानवकृत वातावरण है। (**अध्याय** :1, **पृष्ठ नंबर**: 9)

- समग्रता के प्रति रहस्यविहीन दर्शन को धारण करने में असमर्थ अन्तर्राष्ट्र, सत्यता के संरक्षण में एवं संवर्धन प्रक्रिया में असमर्थ (राष्ट्र) व्यवस्था, सत्यता का प्रचार करने में असमर्थ समाज, सत्यता का **अनुसरण** करने में असमर्थ परिवार, सत्यतापूर्ण आचरण करने में असमर्थ व्यक्ति घोर क्लेश से पीड़ित है। (**अध्याय** :1, **पृष्ठ नंबर**: 15)
- मानवीयतापूर्ण आचरण ही अवधारणा का प्रमाण है। अवधारणा ही निवृत्ति में प्रमाणित होती है। निवृत्ति ही संवेग व विवेक, संवेग व विवेक ही अनुगमन व **अनुसरण**, अनुगमन व **अनुसरण** ही उद्घाटन, उद्घाटन ही प्रकटन, प्रकटन ही प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष ही प्रमाण, प्रमाण ही अनुभूति, अनुभूति ही क्षमता योग्यता और पात्रता, क्षमता योग्यता व पात्रता ही स्थितिवत्ता, स्थितिवत्ता ही विभव, विभव ही वैभव और वैभव ही आचरण है।

  (**अध्याय** :1, **पृष्ठ नंबर**: 19)

- वैचारिक क्षमता के परिमार्जन हेतु सत्मार्ग एवं शुभकारी योगाभ्यास प्रसिद्ध है। चेतना विकास मूल्य शिक्षा पूर्वक संस्कार में गुणात्मक परिवर्तन भी है यही सर्व शुभकारी है। पुन: यही वैचारिक क्षमता है। यह क्रम मानवीयता तथा अतिमानवीयतापूर्ण आचरणों से सम्पन्न होते तक परिपूर्ण व्यवस्था है। यह ''नियम–त्रय'' के पालन **अनुसरण** एवं अनुशीलनपूर्वक सफल है अन्यथा असफल है। **(अध्याय :1, पृष्ठ नंबर: 19)**
- स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण भेद से प्रत्यक्ष क्रियायें हैं।

  सामान्य बुद्धि से स्थूल, विशेष बुद्धि से सूक्ष्म, विशिष्ट बुद्धि से कारण का प्रत्यक्षीकरण प्रसिद्ध है। इसी के आधार पर अनुमान और आगम क्रिया का भी स्थूल, सूक्ष्म और कारण रूप में रहने का प्रमाण सिद्ध होता है। रूप और गुण स्थूल; गुण और स्वभाव सूक्ष्म; स्वभाव और धर्म कारण क्रियायें है। इसलिये

  व्यवहार उत्पादन कर्मों में तीन स्तर में प्रवृत्तियों को पाया जाता है:– (1) स्वतंत्र (2) **अनुकरण** (3) **अनुसरण**।

  स्वतंत्र प्रवृत्तियों की क्रियाशीलता उन परिप्रेक्ष्यों में स्पष्ट होती हैं जिनके सम्बन्ध में ये विशेषज्ञता हैं।

  जो विशेषज्ञ होने के लिये इच्छुक हैं उन्हें **अनुकरण** क्रिया में व्यस्त पाया जाता है।

  जिनमें विशेषज्ञता के प्रति इच्छा जागृत नहीं हुई है उन्हें **अनुसरण** क्रिया में अनुशीलनपूर्वक ही कर्म एवं व्यवहार रत पाया जाता है। ये विकास एवं अवसर के योगफल का द्योतक है। अवसर प्रधानत:व्यवस्था एवं शिक्षा ही है।

  स्वतंत्र–सक्रियता स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण क्रिया की सान्निध्यानुभूति–क्षमता से; **अनुकरणात्मक** सक्रियता स्थूल एवं सूक्ष्म क्रिया की सान्निध्यानुभूति क्षमता से; अनुसरणात्मक–सक्रियता स्थूल क्रिया की अनुभूति–क्षमता से सम्पन्न पायी जाती है। यही व्यंजनीयता की क्षमता में प्रत्यक्ष अन्तरान्तर है।

  स्वतंत्र सक्रियता में नियंत्रण–क्षमता स्वायत्त, **अनुकरण**–क्षमता में स्वेच्छा से नियन्त्रित होने की क्षमता, **अनुसरण** सक्रियता में अनुशासित होने की क्षमता समाहित है।

  सार्वभौमिक कामनानुरूप कार्यक्रम में रत होने से ही सभी स्थितियों में दोष दूर होते हैं। यही मांगल्यप्रद है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 22–23)**

- अन्य काम्य कामनायें केवल मंगलमयता की भास प्रदायी हैं न कि अनुभवदायी। इसलिये सर्वमंगल कामनानुरूपी कार्यक्रम तथा उसकी **अनुसरण** योग्य क्षमता पर्यन्त मानव प्रयास करने के लिये बाध्य है। **(अध्याय :2, पृष्ठ नंबर: 38)**

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- नियंत्रण पूर्वक व्यवस्था ही न्याय शास्त्र एवं नियंत्रण क्रम–व्यवस्था है। नियंत्रण ही विधि और क्रम ही नीति है और समाधान ही व्यवस्था है। आचरण रूपी विधि एवं व्यवस्था मानव इकाई में पूर्णता सहज प्रमाण है यह जागृत इकाई का स्वनियंत्रित होने का स्वभाव है। मानव इकाई में जीवन सहज गठन–पूर्णता, क्रिया–पूर्णता एवं आचरण–पूर्णता प्रमाणित होती है इसलिए पूर्णता की दिशा में व्यवस्था का **अनुसरण** ही अभ्यास का प्रधान लक्षण है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 5)**
- मानव मध्यस्थ क्रिया के **अनुसरण**–पूर्वक ही जागृतिशील है। यह जागृति की एक अवस्था का द्योतक है। मानव में ही मध्यस्थ को **अनुसरण** करने का अवसर है। सम–विषम के नियन्त्रण का आधार मध्यस्थ है, साथ ही मध्यस्थ क्रिया ही समाधान है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 6)**
- मानव के चारों आयामों एवं पाँचों स्थितियों में मध्यस्थता सहज सुलभ है। मध्यस्थता अनुशीलन के बिना मानव में अखंडता नहीं है। मध्यस्थता आवेश नहीं है, इसके **अनुसरण** पर्यन्त जागृति का अभाव नहीं है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 6)**
- नियम, न्याय, धर्म एवं सत्य अखंड हैं, क्योंकि इनकी मात्रा का निर्णय नहीं है। क्रमश: मानव **अनुसरण**, अनुशीलन, अनुगमनपूर्वक अनुभव के लिए प्रेरित है। यही अखंड सामाजिकता और सार्वभौम व्यवस्था का स्पष्ट सम्भावनात्मक तथ्य है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 11)**
- स्वंय के लिए जो घटनाएं वेदना के कारण हैं वे ही दूसरों के लिए भी हैं, ऐसी स्वीकृति क्षमता ही संवेदना है। इसके अभाव में मानव जीवन में निहित विशेष मूल्यों का प्रयोजन सिद्ध होना संभव नहीं है। इसी कारणवश मानव सामाजिक मूल्यों के आचरण, **अनुसरण** एवं अनुशीलन के लिए प्रेरित है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 13)**
- अनुभूति ही मानव का आद्यान्त लक्ष्य है। यही जागृति की अनिवार्यता को प्रसवित करता है। इसलिए व्यवस्था, प्रक्रिया, पद्धति, प्रणाली एवं नीति के अनुसंधान एवं **अनुसरण** के लिए संकल्प, इच्छा, विचार व आशा का प्रवर्तन है, फलत: उत्पादन, व्यवहार तथा अनुभूति की चरितार्थता है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 14)**
- मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में ही अनुभव में प्रवृत्त रहने, अनुभव से प्रभावित होने और प्रभावित करने तथा अनुभव के लिए जागृतिशील रहने की संभावना एवं अवसर है, क्योंकि अनुभव आत्मा में ही होता है, अनुभव मध्यस्थता है। यह उत्पादन में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में समाधान एवं अनुभव में सत्य है साथ ही मानव जीवन में, से, के लिए प्रमाण भी है। सम और विषम क्रियाएं मध्यस्थ क्रिया से अनुशासित है ही, साथ ही **अनुसरण**, **अनुकरण** व अनुगमन के लिए भी बाध्य हैं। **(अध्याय :1 , पृष्ठ नंबर: 14–15)**

- व्यवहाराभ्यास अनुसंधान, **अनुसरण**, आचरण, संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था है, जिसकी चरितार्थता सामाजिकता, अखंडता, अभयता, समाधान, संतुलन एवं स्वर्ग है। (**अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर:** 19)
- मानवीयता पूर्वक ही सामाजिकता प्रमाणित होती है। अमानवीयता में सामाजिकता की संभावना नहीं है। अतिमानवीयता में मानवीयता समर्पित रहती ही है। अतः सामाजिकता की संपूर्ण अभिव्यक्ति मानवीयता और अतिमानवीयता ही है क्योंकि सामाजिकता और किसी प्रकार सिद्ध नहीं होती है। नियतिक्रम सहज विकासक्रम, विकास एवं जागृतिक्रम, जागृति पूर्वक ही मानव मानवीयता का **अनुसरण** व आचरण करने के लिए पात्र है। (**अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर:** 22)
- जागृत मानव में अनुभवमूलक बोध चिन्तन से स्थितिवत्ता का दर्शन, मूल्य–दर्शन है, इसी से संतुलन और सार्वभौमता व अखण्डता प्रमाणित होना पाया जाता है। साथ ही निर्धारण एवं निश्चय पूर्वक **अनुसरण** व अनुमोदन क्रिया को सम्पन्न करती है। (**अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर:** 22)
- वर्ग वाद में अखंडता नहीं है। जब तक मानव जीवन में अखंडता नहीं है तब तक भय से मुक्ति नहीं है। जब तक भय से मुक्ति नहीं है तब तक स्वतंत्रता नहीं है, जब तक स्वतंत्रता नहीं है तब तक अपव्ययता का अभाव नहीं है।

  संपूर्ण संग्राम–सामग्री, साधन–तंत्र, व्यवस्था मात्र अपव्यय ''में, से, के लिये'' ही है। जबकि प्रत्येक मानव प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग तथा सुरक्षा ही चाहता है। यही चाहने और करने के बीच में जो दूरी है वही अंर्तद्वन्द्व, आत्म विश्वास का अभाव तथा स्वयं में स्वयं के विश्वास में सशंकता और भय का कारण है। यही पीड़ा है। अंर्तद्वन्द्व से मुक्ति के लिये प्रत्येक मानव को प्रत्येक स्तर में अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा हेतु मानवीयता की सीमा में ''नियमत्रय''का अनुगमन–**अनुसरण** एवं अनुशीलन करना ही होगा। (**अध्याय : 4, पृष्ठ नंबर:** 63)

- ''सौजन्यतापूर्वक ही मानव अभयता से परिपूर्ण होता है'' जिसमें अर्थ की सदुपयोगात्मक भावनायें परिपूर्णतः समाविष्ट रहती है। अर्थ का सदुपयोग होना ही सुरक्षा है। सौजन्यता सीमित नहीं है। यदि सीमित है तो सौजन्यता नहीं है। वर्ग–वाद या वर्गीय संस्थानुरूप **अनुसरण** में शिष्टता का पूर्ण विकास होना संभव नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति वर्गवाद से ओत–प्रोत रहता है वह उस वर्ग की सीमा में अत्यंत सौजन्यतापूर्वक प्रस्तुत रहता है एवं अन्य वर्ग के साथ निष्ठुरतापूर्वक प्रस्तुत होता हुआ देखा जाता है। इस साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि वर्ग सीमा में मानव की शिष्टता परिपूर्ण नहीं है। अपरिपूर्णता वश ही स्वयं में, स्वयं का विश्वास नहीं हो पाता है। यही घटना प्रत्येक जन्म में पराभव का कारण होती है। इसे विभव की परम्परा में पाने के लिये मानवीयता ही एक मात्र शरण है। (**अध्याय : 4, पृष्ठ नंबर:** 63)

- मानव जीवन की विधि एवं नीति–संहिता में असंदिग्धता ही शिक्षा में पूर्णता है। व्यवस्था की सफलता उसके कार्यक्षेत्र के अंतर्गत पाई जाने वाली जनजाति में तारतम्यता ही असंदिग्धता का प्रत्यक्ष रूप है। विधि–संहिता ही मानव–जीवन–संहिता है। यही प्रकृति के विकासक्रम, विकास, जागृतिक्रम, जागृति की भाषाकरण संहिता है। उसका **अनुकरण**, **अनुसरण** और आचरण–प्रक्रिया ही नीति है। यही मानव जीवन का कार्यक्रम है। (**अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर: 74–75**)
- प्रत्येक मानव शुद्धतः संघर्ष, विषमता, द्रोह–विद्रोह को नहीं चाहता है। यह सब भ्रमित मानव वातावरण के सम्पन्न होता हुआ पाया जाता है। यही सामाजिकता के लिए अड़चन है। अखण्ड समाज व्यवस्था के बिना मानव में मानव चेतना होना संभव नहीं है। मानव में विकास एवं जागृति के प्रति स्पष्ट ज्ञान, तदनुकूल आचरण, **अनुसरण**, संरक्षण, सहयोग व अध्ययन की न्यूनता ही सामाजिकता की अपूर्णता है। यह मानव के लिए वांछित एवं आवश्यक घटना नहीं है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 84**)
- ''ज्ञानावस्था की चैतन्य इकाई में प्रधान लक्षण दर्शन–क्षमता ही है।'' मानव की मूल क्षमता या स्वत्व यही है। यही क्षमता ''तात्रय'' को स्पष्ट करती है। यही स्व–पर मौलिकता की स्वीकृति ही संस्कार, संस्कार ही निश्चय, निश्चय ही संकल्प, संकल्प ही अनुगमन एवं **अनुसरण**, अनुगमन एवं **अनुसरण** ही अनुसंधान एवं संधान, अनुसंधान एवं संधान ही व्यवहार एवं उत्पादन, व्यवहार एवं समृद्धि ही अनुभूति व समाधान, अनुभूति व समाधान ही जीवन, जीवन ही अस्तित्व एवं परमानंद, अस्तित्व एवं परमानंद ही सतर्कता एवं सजगता, सतर्कता एवं सजगता ही पूर्ण जागृति, पूर्ण जागृति ही दर्शन–क्षमता की परमावधि है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 91**)
- सामाजिकता का **अनुसरण** आचरण तब तक संभव नहीं है जब तक मानवीयतापूर्ण जीवन सर्वसुलभ न हो जाय। ऐसी सर्वसुलभता के लिए शिक्षा और व्यवस्था ही एकमात्र दायी है, जिसके लिये मानव अनादिकाल से प्रयासशील है। प्रत्येक मानव को सतर्कता एवं सजगता से परिपूर्ण होने का अवसर है, जिसको सफल बनाने का दायित्व शिक्षा एवं व्यवस्था का ही है। सफलता और अवसर का स्पष्ट विश्लेषण ही शिक्षा है। प्रत्येक मानव सही करना चाहता है और न्याय पाना चाहता है। साथ ही सत्यवक्ता है। ये तीनों यथार्थ प्रत्येक मानव में जन्म से ही स्पष्ट होते हैं। यही अवसर का तात्पर्य है। इन तीनों के योगफल में भौतिक समृद्धि एवं बौद्धिक समाधान की कामना स्पष्ट है। यह भी एक अवसर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए अवसर का सुलभ हो जाना ही व्यवस्था की गरिमा है। न्याय प्रदान करने की क्षमता एवं सही करने की योग्यता की स्थापना ही शिक्षा की महिमा है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 93**)
- ''संस्कृति का शुद्ध रूप संस्कार सम्पन्न होने की परम्परा है।'' यही पूर्ण शिक्षा है। मानव में संस्कार गुणात्मक परिर्वतन क्रिया परम्परा है। गुणात्मक परिर्वतन जागृति अनुक्रमानुगमन (अनुक्रम–अनुगमन) या **अनुसरण** है। मानव की जागृति अमानवीयता से मानवीयता में, मानवीयता से अतिमानवीयता में स्पष्ट है। क्रम ही परम्परा है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 94**)

- .... मानवीयतापूर्ण संस्कृति की शिक्षा से ही कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान एवं स्नेहात्मक मूल्यों का अनुभव करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति के **अनुसरण** योग्य सौम्यता, सरलता, पुज्यता, अनन्यता, सौजन्यता, सहजता, आदर, सौहार्द्रता एवं निष्ठात्मक शिष्टता को अभिभूतता पूर्वक अभिव्यक्त करने योग्य संस्कारों की स्थापना होती है। मानवीयतापूर्ण संस्कृति सम्बद्ध शिक्षा ही प्राकृतिक एवं वैकृतिक ऐश्वर्य का सदुपयोग एवं सुरक्षा करने योग्य संस्कारों की स्थापना करती है। यही क्रम से विधि–निषेध एवं व्यवस्था–अव्यवस्था का निर्णय करने योग्य सुसंस्कारों को स्थापित करती है। यही क्रम से मानव की चिर आशा एवं तृषा है। शिक्षा ही मानव में संस्कार परिवर्तन की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं कार्यक्रम है। शिक्षा में ही संस्कृति एवं सभ्यता का उद्बोधन–प्रबोधनपूर्वक स्फुरण होता है, जो व्यक्तित्व को प्रकट करता है। (**अध्याय : 7, पृष्ठ नंबर: 105**)
- ... मानव में मानवीयता का प्रकटन होना ही स्वस्थ परम्परा है। विशुद्ध जागृत मानव परम्परा वास्तविकताओं का **अनुसरण**, अनुगमन एवं अनुसंधान है। गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक गति में द्रोह और विद्रोह का अत्याभाव है। यही सत्यता स्वस्थ परम्परा का साक्ष्य है। ऐसी स्वस्थ परम्परा में ही निपुणता, कुशलता एवं पांडित्य की संयुक्त चरितार्थता होती है।...(**अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 126**)
- ...मूल्यवत्ता के बिना गौरव संभव नहीं है। गौरव विहीन स्थिति में मार्ग, क्रिया, व्यवहार, आचरण एवं दिशा में गुणात्मक परिवर्तन स्पष्ट नहीं होता है। फलतः स्थापित मूल्यानुभूति एवं सामाजिकता सिद्ध नहीं होती है। गौरवानुभूति के मूल में यथार्थता एवं वास्तविकता की ज्ञान परम्परा अर्थात् अनुभव परम्परा का होना आवश्यक है। यथार्थता एवं वास्तविकता अनुभूत है ही अथवा अनुभव सिद्ध प्रमाण है। अनुभव ''में, से, के लिए'' ही मानव सर्वथा, सर्वकाल देश में समर्पित होने के लिए बाध्य है अर्थात् शिक्षा पूर्वक आचरण करने के लिए तृषित है। इसी कारणवश मानव अनुभव परंपरा का गौरव करने के लिए अर्थात् पूर्णतया स्वीकृति पूर्वक अनुगमन एवं **अनुसरण** करने के लिए तत्पर है। इसके प्रमाण में उसके लिए उनमें प्रयास का अभाव नहीं है। ''यह इंगित कराता है कि इतिहास को गौरवमय बनाना, बनाए रखना, बनाते ही जाना मौलिक उपलब्धि की परम्परा है।''... (**अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 131**)

- ...मानवीयतापूर्ण संस्कृति सभ्यता का प्रचार, प्रदर्शन, प्रकाशन, गोष्ठी, संगोष्ठी, आख्यान, स्पष्टीकरण एवं समीक्षात्मक कार्यकलाप ही समाज का प्रबोधन एवं प्रोत्साहन सर्वस्व है। परिवार में चारित्रिक एवं नैतिक कार्यक्रम में द्वढ़ता, विश्वास एवं अवगाहन क्षमता ही व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार में सहयोगिता एवं सहकारिता है, जो स्पष्ट है। यही मानव जीवन चरितार्थता का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप है। यही जीवन चरितार्थता भी है। यही मानव के मौलिक अधिकार तथा उसकी उपयोगिता, उपादेयता एवं उपलब्धि है। मौलिक अधिकार का अनुष्ठान ही स्वतंत्रता का लक्षण है। इसका पालन, **अनुसरण** एवं अनुशीलन ही स्वतंत्रता का द्योतक है। इसी मौलिक अधिकार में स्वत्व सिद्धि होती है। यही राष्ट्र में अखण्डता एवं प्रभुसत्ता, समाज में सह–अस्तित्व, परिवार में सहकारिता एवं व्यक्ति में मौलिक अधिकार का आचरण है। **(अध्याय : 10, पृष्ठ नंबर: 138)**

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2016)

- आत्मीयता ही परस्पर अपराधों तथा अपव्ययों का निरोधक और नियामक है। साथ ही न्याय, धर्म, सत्य के **अनुसरण** के लिए प्रेरणा प्रदायिनी है। (**अध्याय :2, पृष्ठ नंबर: 12**)
- स्वतंत्र मानव इकाई जागृति सहज प्रमाण है तथा अन्य उसका **अनुसरण** करने में या पूर्ण जागृति के निकट है। (**अध्याय : 2 , पृष्ठ नंबर: 14**)
- अनुभवसमुच्चय ही स्वतंत्रता है। दर्शनसमुच्चय पूर्वक कार्यक्रम–समुच्चय का **अनुसरण** करना ही साधना है। फलत: अनुभव है। (**अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 35**)
- संपूर्ण प्रकृति ब्रह्म में अनुप्राणित होना–रहना पाई जाती है। अस्तु, उसकी अनुभूति–योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक आनंद की निरंतरता नहीं है। उसके लिए मानवीयता पूर्ण व्यवहार का **अनुकरण**, **अनुसरण** तथा अतिमानवीयता योग्य अभ्यास ही एक मात्र उपाय है। (**अध्याय : 7, पृष्ठ नंबर: 40**)
- ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि–व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा–प्रणाली, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन **अनुसरण** ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है। (**अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 41**)
- वस्तुगत सत्यता सहज उद्घाटन क्रिया–प्रक्रिया एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखंड सामाजिकता का आचरण–**अनुसरण** एवं अनुशीलन ही व्यवहार, समाधान एवं अनुभूति निरंतरता हेतु लिया गया प्रयास, पद्धति एवं प्रणाली ही अभ्यास है। उपयोगिता, उपादेयता एवं अनिवार्यता देश–काल–अधिकार व उपलब्धि की अपेक्षा में निर्णीत है। प्रकृति के विकास की श्रृंखला में पाए जाने वाले अंतिम ह्रास तथा विकास का दर्शन स्पष्ट होना, साथ ही उसमें पाए जाने वाले नियमों का विश्लेषित होना ही अध्ययन है। अध्ययन से संबंधित क्रिया ही प्रयोग, व्यवसाय, व्यवहार, प्रयास एवं अभ्यास है। अध्ययन से संबन्धित क्रिया ही प्रयोग, व्यवसाय, व्यवहार, प्रयास एवं अभ्यास है। (**अध्याय : 8, पृष्ठ नंबर: 44**)

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(**संस्करण**: 2009)

- ...हर आदमी किसी न किसी धर्म संविधान और राज्य संविधान में अर्पित होते ही आया। धर्म तथा राज्य संविधान भिन्न भिन्न रहे। इसका फल यही निकला कि हर व्यक्ति दूसरे किसी पावन ग्रंथ को अथवा धर्म संविधान को मानने वाले के साथ वाद विवाद करते रहा। यही एक मात्र धार्मिक कार्य हो गया। इस विधि से हर व्यक्ति अपने–पराये की दीवाल बनाने वाला शिल्पी हो गया।

  फलस्वरूप सामान्य जन मानस अपने–पराये की मानसिकता के साथ जीने को बाध्य हुआ। इसी मानसिकता के साथ जब–तब दूसरे धर्म संविधानों को **अनुसरण** करने वालों के साथ झड़प होते ही रही। आदमी आदमी को मारने के लिए, वध करने के लिए अपने पराये के आधार पर मानसिकता को तैयार करते आया। आज भी इस प्रकार की घटनाएँ बारम्बार देखने को मिल रही हैं। इस अपने पराये की दीवाल बनाने के धंधे में सारा राज्य प्रबंध (संविधान), संपूर्ण पावन धर्म संविधान सिमट गया। अब एक ही धंधा सभी समुदायों के साथ बचा हैं वह है एक दूसरे समुदाय को कैसे मिटाए। इसके अलावा और कोई चिंतन मानव मानस में जीता जागता दिखता नहीं है। इसी के साथ संग्रह भी समाया हैं। विकसित देश की समीक्षा समर शक्ति के आधार पर ही विश्व स्तरीय संस्थाओं में हो चुकी हैं अब धर्म कहलाने वाले आधारों पर भी मारपीट ही एक मात्र कार्यक्रम रह गया है। इसके लिए भी बहुत सारा धन चाहिए ही। उसके लिए अनेक प्रकार से धन संचय करने का अनुसंधान भी कर लिया गया हैं। इस अनुसंधान की समीक्षा अर्थात् धन संचय की समीक्षा शोषण, द्रोह, लूट–खसोट की चौखट में स्पष्ट है। यह तो सिद्धांत ही है कि किसी का शोषण किये बिना धन संचय नहीं होता।... **(अध्याय :, पृष्ठ नंबर: 31–32)**

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- मानव के हर रंग रूप संबंध में समानता संवाद का दूसरा मुद्दा बनता है हर मानव अपने पहचान को बनाए रखने के लिए बाल्यकाल से ही प्रयत्नशील है पहचान प्रस्तुत करने की प्रवृतियां विभिन्न तरीके से प्रस्तुत होती हुई आंकलित होती है परिस्थितियां भिन्न–भिन्न रहते हुए प्रवृत्तियों में समानता होती ही है इसी के साथ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक संरक्षण में पोषण में भरोसा रखने वाली प्रवृत्ति मिलती है। संरक्षण पोषण के क्रम में न्याय की अपेक्षा प्रस्फुटित होती हुई देखने को मिलती है। किशोर अवस्था तक सही कार्य व्यवहार करने की इच्छाएँ आज्ञापालन, **अनुसरण**, सहयोग के **अनुकरण** के रूप में प्रवृत्तियों को देखा जाता है यह बहुत अच्छे ढंग से समझ में आता है यह जन चर्चा का विषय है। संवाद के लिए यह दोनों मुद्दों अच्छे ढंग से सोचने, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करने व्यवहार विधि से विचारों को सम्बद्ध करने में काफी उपकारी हो सकते हैं। तीसरा मुद्दा देखने को मिलता है कि हर मानव संतान शिशुकाल से ही जब से बोलना जानता है तब से जो भी देखा सुना रहता है उसी को बोलने में अभ्यस्त रहता है। इस ढंग से हर मानव संतान बाल्यकाल से ही सत्य वक्ता होना आकलित होता है। जबकि सत्यबोध उसमें रहता नहीं है। शब्दों को बोलना ही बना रहता है। इससे यह भी पता लगता है मानव परंपरा का दायित्व है कि मानव संतान को सत्य बोध कराएं। इसी के साथ सही कार्य, व्यवहार का प्रयोजन बोध सहित पारंगत बनाने की आवश्यकता है। न्याय बोध हर संतान को कराने का दायित्व परंपरा के पक्ष में ही जाता है। इस ढंग से बच्चों के लिए प्रेरक साहित्यों, कविताओं की रचना करने के लिए ये तीनों सार्थक प्रवृत्तियाँ है मानव में प्रवृतियां प्रयोग और परिक्षण बहुआयामों में होना देखा गया है। ये सब जन चर्चा के लिए बिन्दुएँ हैं।... **(अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर: 37–38)**
- जनचर्चा में मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग का **अनुसरण** करने वाले सभी लोग समाहित रहते हैं। आज की स्थिति में जनचर्चा के सर्वाधिक मुद्दे सुविधा, संग्रह, भोग पर आधारित होतें हैं। संपूर्ण साहित्य, वांडमय, परिकथा, कथाओं व संचार माध्यम का वाचन–श्रवण भी इन्हीं अर्थों में सुनने में आता है। वर्तमान के आदर्शों के आधार पर ही जनचर्चा होना देखा गया है। **(अध्याय :1, पृष्ठ नंबर: 7)**

- भ्रमवश हम मानव यही कहते रहे हैं कि आवश्यकता अनंत है साधन सीमित हैं। इसलिए संघर्ष करना जरूरी है। छीना–झपटी, शोषण ही संघर्ष करना जरूरी है। छीना–झपटी, शोषण ही संघर्ष का रूप हुआ। ऐसे घृणित कार्य करते हुए भी श्रेष्ठता का दावा किया, बेहतरीन जिन्दगी का दावा किया। यह कहाँ तक न्याय हुआ ? इस मुद्दे पर भी जनचर्चा की आवश्यकता है। भ्रमित जन मानस में भी न्याय, धर्म, सत्य की अपेक्षा रूप में स्वीकृति बनी हुई है किन्तु उसी के साथ–साथ परंपरा में इसकी प्रामाणिकता की उपलब्धता नहीं रहने के कारण मानव अपने अपने तरीके से जीवों से अच्छा जीने के स्वरूप को बना लेता है। जीने के क्रम में आहार, विहार, व्यवहार, उत्पादन, कार्य का निश्चयन आवश्यक है। प्रकारांतर से मानव इसे **अनुसरण** किये रहता है। (**अध्याय :5, पृष्ठ नंबर: 67**)

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- परस्पर पहचानना–निर्वाह करना शाश्वत् नियम है । उपयोगिता सहित पूरक होना शाश्वत् नियम है । पूरकता का तात्पर्य विकास और जागृति में प्रमाण सहित प्रेरक पूरक होने से है । विकास और जागृति में स्व शक्तियों का अर्पण समर्पण है। जड़ प्रकृति में पूरकता किसी एक के अंश को स्वयं स्फूर्त विधि से विस्थापित कर देने के रूप में ही है। मानव में समाधानपूर्वक समृद्ध होने की विधियों को देखा जाता है । यही पुन: जड़ प्रकृति में रचना–विरचना में भी देखने को मिलता है कि रचना विधि में पूरकता, विरचनाएं पुनर्रचना के लिये पूरकता के रूप में प्रस्तुत होना देखा जाता है । इस प्रकार पूरकता जड़ प्रकृति में भी देखने को मिलता है । परस्पर पूरक है इस तथ्य का साक्ष्य पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था विकसित स्थिति में वर्तमान रहना ही है । सभी जीव संसार जीने की आशा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है। ज्ञानावस्था के मानव उसी का **अनुकरण–अनुसरण** करने के जितने भी कार्यकलापों को अपनाया स्वपीड़ा–परपीड़ा, स्वशोषण–परशोषण, स्वयं के साथ वंचना और अन्य के साथ प्रवंचना और इन सबका सारभूत बात स्वयं के साथ समस्या और उसकी पीड़ा से पीड़ित रहना, अन्य को पीड़ित करना रहा । यही भ्रमित मानव परंपरा रूपी समुदायों में देखने को मिला । यही शिक्षा, संस्कार, संविधान और व्यवस्था इस दशक तक मानी जा रही है । ये सब समस्याकारी है । समस्या स्वयं पीड़ा के रूप में प्रभावित होना देखा गया । इसका निराकरण जागृति, उसका प्रमाण रूप में समाधान ही है । **(अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर: 69–70)**
- जो जिस जाति धर्म के नियम कानून रूपी (ईश्वरीय नियम कानून रूपी) कार्यकलापों को उन्हीं–उन्हीं को स्वर्ग मिलने का स्वीकृति हो पाती है । अन्य प्रकार के धर्म वालों को वह स्वर्ग मिल नहीं सकती है । ऐसा हर सामुदायिक धर्म वाले जो **अनुसरण** करते हैं और जो आर्षेय ग्रंथों का अनुमोदन करते हैं ये सब कहते भी हैं, मानते भी है । **(अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर: 156)**
- साधन, साध्य और साधक : का प्राचीन समय से चर्चा और **अनुसरण** की वस्तु (विषय) मानते हुए चले आता हुआ मानव परंपरा में स्पष्ट रूप में प्रस्तुत है । साधक के रूप में मानव को, साध्य के रूप में मानव व जीवन लक्ष्य को, साध्य और साधक के बीच में दूरी को घटाकर लक्ष्य सामीप्य, सान्निध्य, समरुप्य क्रम में प्रमाणित ही होने के क्रम में प्रयुक्त सभी उपाय साधनों के नाम से जाना जाता है । साधन के रूप में कल्पना किया गया सम्पूर्ण उपाय अनेकानेक उपायों का सम्मिलित स्वरूप में साधक होना देखा गया है ।.... **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 213)**

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(संस्करण : 2009)

- प्राचीन समय से अन्य शब्दों की तरह समाज शब्द भी प्रचलित रहा है। समाज शब्द का ध्वनि निर्देश तब बनता है जब इसके पहले एक निश्चित वस्तु (वास्तविकता) हो, उसे नाम चाहिए जैसे– हिन्दू समाज, मुसलमान समाज, ईसाई समाज, आदि। ये सब अपने को श्रेष्ठ मानते रहे हैं।

  श्रेष्ठता का मूल तत्व पुण्य कार्यों को मानने, **अनुसरण** करने से है। पुण्य कर्म पूजा, आराधना, प्रार्थनाएँ है। इन पुण्य कर्मों, प्रतीकों, पुण्य स्थलियों में विविधताएँ है। इन सबके मूल में परम पावन वस्तु 'ग्रन्थ' है। ये सभी 'ग्रन्थ' अलग–अलग नामों से ख्यात है। इन सभी 'ग्रन्थों' में स्वर्ग–नर्क, पाप–पुण्य का वर्णन है। इन पावन ग्रन्थों में जितनी भी वाणियाँ हैं, वे सभी ईश्वर, आका, देवदूत की वाणी अथवा आकाशवाणी माने गये हैं। यह सर्वविदित है।... **(अध्याय :1, पृष्ठ नंबर: 1)**

- संस्कृति के साथ सभ्यता का पहचान हर समुदाय स्वीकारा है। सभ्यता विशेषकर आगन्तुक व्यक्ति के साथ किया गया संबोधन परस्पर परिचय क्रम, परस्परता में घटित घटना, हाट (बाजार), सभा, सम्मेलनों में राजधर्म, संबंधों में आशय, मार्गदर्शन, निर्देशन का **अनुसरण** सभ्यता के मूल में स्पष्ट है। संस्कृति सभ्यता विधि व्यवस्था का नाम हर परंपरा, समुदायों के मूल में होना पाया जाता है। धर्म संविधान और राज्य संविधान दोनों संविधानों में शक्ति केन्द्रित है, दिखती है। सभी राज्य (आर्थिक राज्यनीति सम्पन्न संविधान) संविधान शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में है। इसका व्यवस्था सुविधावादी होना भी देखा गया है। **(अध्याय :1, पृष्ठ नंबर: 14)**
- जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में ''जीने दो जीयो'' वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज शिक्षा–संस्कार के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में **आज्ञापालन–अनुसरण** विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन **अनुकरण** योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही संस्कार–शिक्षा का तात्पर्य है। **(अध्याय : 6, पृष्ठ नंबर: 178–179)**

- जन्मदिन उत्सव संस्कार – जन्मदिनोत्सव को सम्पादित करने की उमंग, उमंग का तात्पर्य उत्साह और प्रसन्नता सहित आशय को व्यक्त करने से है। आशय जन्म दिवस का स्मरण बीते हुए वर्षों की गणना से सम्बन्धित रहता है। यह सर्वविदित है। इस क्रम में शैशवावस्था तक जीवन जागृति कामना सहित मानवीयतापूर्ण आचरण सम्पन्न होने, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान में पारंगत होने के कामनाओं सहित चर्चा, वार्तालाप, कामना गीत के साथ गायन, नृत्य, वाद्य के साथ उत्सव सम्पन्न करने का कार्यक्रम हर शैशवावस्था तक उत्सव में भाग लेने वाले हर व्यक्ति से हर व्यक्ति को सम्मान व्यक्त करता हुआ शिशु और आशय आकांक्षा सहित आशीषों को प्रस्तुत करने वाले हर व्यक्ति उत्सव में भागीदारी के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे उत्सव मानव सहज जागृति परंपरा का ही पुनर्उद्धार ही रहता है। ऐसी जन्मदिनोत्सव को जैसा ही शैशवावस्था से कौमार्य अवस्था आता है अथवा जिस जन्मदिनोत्सव तक अपने मूल्यांकन करने में सक्षम हो जाते हैं, जिसको अभिभावक भले प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। इसी जन्मदिवस से हर मानव संतान से अपना मूल्यांकन कराने और सत्यापित करने की विधि अपनाना आवश्यक रहता ही है। ऐसा सत्यापन सहज अभिव्यक्ति की पुष्टि में उत्साह और प्रसन्नता को व्यक्त करने का समारोह बंधु–बांधव और अभिभावक मित्रों के साथ–साथ अनुभव करना बनता है। ऐसी सम्पूर्ण अनुभूति का आधार का मापदण्ड जीवन जागृति, मानवीयतापूर्ण आचरण शैशवावस्था से किया गया आज्ञापालन, सहयोगवादी कार्यकलाप, **अनुसरण** किया गया कार्यकलाप अर्थात् अभिभावक एवं आचार्यों के साथ किया गया **अनुसरण** क्रियाकलाप और उसके प्रयोजनों के साथ उन–उनके सभी अभिमत किशोरावस्था से ही व्यक्त होना स्वाभाविक रहता ही है। स्वयं स्फूर्त आशा, आकांक्षा के संदर्भ में भी प्रोत्साहनपूर्वक संप्रेषित करने का अवसर प्रदान करना उत्सव समारोह का एक कर्तव्य के रूप में होना पाया जाता है। मुख्य रूप में जिनका जन्मदिनोत्सव मनाया जाता है उनका उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन सम्बन्धी मूल्यांकन पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान आकर्षित करने का कार्यक्रम जन्मदिनोत्सव का प्रधान उद्देश्य और कार्यक्रम है। इस प्रकार जन्मदिनोत्सव के सम्पूर्ण अवयव स्पष्ट हो जाता हैं। इसी के साथ यह भी परस्पर प्रेरणा का आधार होता है कि जन्मदिनोत्सव जिनका मनाया जाता है उस समय उनका साथी, मित्र, भाई सब अपने–अपने सत्यापन विधि को अपनाना मानव परंपरा के लिये आवश्यकीय मौलिक प्रयोजन सिद्ध होना सहज है। (**अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 277–279**)

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- Not Found

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- जन्म से मानव संतान **अनुकरण–अनुसरण** करती हुई देखने को मिलती है। यही आज्ञापालन और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है। परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक–वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण शिक्षा–संस्कार सुलभ होता है। ऐसी स्थिति पाने के लिए जागृति विधि से, शिक्षा–संस्कार को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है। फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 82)**
- शैशविक (शिशु) मानसिकता के आधार पर हर शिशु न्याय का याचक (अभिभावकों के भरोसे पर), सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक (**अनुसरण** और **अनुकरण** के आधार पर), और सत्य वक्ता होता है (सुने देखे के आधार पर), इसी से मानव संतान को क्या चाहिए पीछे पीढ़ी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :–

(1) न्याय प्रदायी क्षमता योग्यता को स्थापित करने की विधि से, न्यायापेक्षा की तृप्ति होना पाया जाता है।

(2)सही कार्य–व्यवहार को करने की इच्छा की तृप्ति, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन की क्षमता, योग्यता, पात्रता को स्थापित करने के आधार पर संपन्न होता है।

(3) सत्यवक्ता होने की तृप्ति, अस्तित्व सह–अस्तित्व रूपी सत्य बोध से होती है। अस्तित्व दर्शन से सत्य बोध, जीवन–ज्ञान से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन तथा मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने से, न्याय प्रदायी क्षमता प्रमाणित होती है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 83)**

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण:2007)

- **अनुशासन** स्वीकृति को सहयोग **अनुसरण** पूर्वक जागृति के अर्थ में सार्थक है । (अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 158)
- नैतिकता

  1. नीति–त्रय का **अनुसरण** ।
  2. तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा। (अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर: 16)

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- मध्यस्थ क्रियाकलाप को मनुष्य–परम्परा के सन्दर्भ में देखें तो – मानव परम्परा में शैशव, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़, और वृद्ध अवस्थाओं के रूप में परिलक्षित है। मानव–परम्परा में "व्यवहार" इसी के साथ सुस्पष्ट होता है। हर मानव–संतान जन्म से ही न्याय का याचक होता है, सत्य वक्ता होता है, और सही कार्य–व्यवहार करने का इच्छुक होता है। मानव–संतान का अपने अभिभावकों के साथ "व्यवहार" होता ही है। मानव–संतान स्वाभाविक रूप में अपने अभिभावकों का **अनुसरण–अनुकरण** करता ही है। इस व्यवहार का "प्रयोजन" है – अभिभावकों द्वारा संतान में न्याय–प्रदायी क्षमता स्थापित हो, सत्य का बोध हो, और सही कार्य–व्यवहार करना सिखाया जाए। ऐसा करना अभिभावकों का "दायित्व" है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए अभिभावकों का पहले से उसके "योग्य" बने रहना आवश्यक है। इस प्रकार – हर मानव–सम्बन्ध में, दायित्वों को निर्वाह करने के लिए उसके लिए आवश्यक ज्ञान, विवेक, विज्ञान से संपन्न रहना आवश्यक है। **(अध्याय :, पृष्ठ नंबर: 230–231)**
- अनुमान से अनुभव तक पहुँचते हैं। अनुभव होता है, तो अनुमान सही है। अनुभव नहीं होता, तो अनुमान सही नहीं है। अनुमान करने की ताकत कल्पनाशीलता के स्वरूप में हर व्यक्ति के पास है। उसके सहारे अनुभव तक पहुँच सकते हैं। जीने में जो प्रमाणित हो सके, वह अनुमान सही है। जीना प्रमाण ही होता है, अनुमान नहीं होता। जीने के अलावा और किसी चीज को प्रमाण कैसे माना जाए? "मैं प्रमाणित स्वरूप में जी रहा हूँ" – इस जगह आपको आना है।

  अनुक्रम से अनुभव होता है। जो कुछ भी होना हुआ है, और जो कुछ भी होना है – वह अनुक्रम है। अनुक्रम का अर्थ है – एक से एक जुडी हुई श्रंखला विधि। इस विधि को पूरा समझने से अनुमान होता है। अनुमान होने के बाद अनुभव होता है। अनुभव होने के बाद प्रयोजन सिद्ध होता है, प्रमाण होता है। मानव के सुधरने के लिए, सुसज्जित होने के लिए यही विधि है।

  अध्ययन में यदि मन लगता है तो अनुभव हो जाएगा।

  अध्ययन में मन नहीं लगता है तो अनुभव नहीं होगा।

  अनुभव के पहले प्रमाण नहीं है। अनुभव के पहले **अनुकरण–अनुसरण** विधि से "अच्छा लगने" की स्थिति में आ जाते हैं, "अच्छा होना" नहीं होता। केवल **अनुसरण–अनुकरण** पर्याप्त नहीं है। जीने में प्रमाणित होने पर ही "अच्छा होना" होता है।

  [अप्रैल २०१०, अमरकंटक]

मैंने जब अध्ययन किया तो मेरे पास अस्तित्व को पढने के लिए पहले से सूचना उपलब्ध नहीं था। जो मैंने समझा उसकी सूचना आपके अध्ययन के लिए मैंने प्रस्तुत किया है। मैंने बिना सूचना के ही जो अध्ययन कर लिया, उसको सूचना के साथ अध्ययन करके अनुभव करने में आपको क्या तकलीफ है?

प्रश्न: हम अभी अध्ययन–क्रम में हैं। जितना समझे हैं, उसको **अनुकरण–अनुसरण** पूर्वक जीने का प्रयास भी कर रहे हैं। फिर भी उत्साह कभी कभी ऊपर–नीचे होता रहता है। उत्साह को कैसे बनाए रखें?

उत्तर: अनुभव के लिए उत्साह को बनाए रखिये – सूचना के आधार पर। आगे चलकर इसको अनुभव करेंगे... इस तरह। सौ हथौड़े की चोटों के बाद एक विशाल पत्थर टूटता है। ९९ चोटें रही, तभी १००वी चोट पर पत्थर टूटता है। जितनी सीमा तक समझ को जी पाते हैं, उससे खुशी भी मिलती है – जिससे आगे के लिए उत्साह बना रहता है। प्रमाण अनुभव के बाद ही है।

विरक्ति विधि से मैंने साधना किया था। साधना–काल में हम हर समय खुश–हाली ही मनाते रहे। कभी अभावग्रस्त या पीड़ा–ग्रस्त नहीं हुए। जबकि साधना में हम सूखते ही रहे! आपके लिए अध्ययन का मार्ग कोई विरक्ति–विधि नहीं है। इसीलिये मैं मानता हूँ, सर्व–मानव के लिए सुलभ अध्ययन–विधि ही है।

[अप्रैल २०१०, अमरकंटक]

http://madhyasth-darshan.blogspot.in/2017/03/blog-post_18.html

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(**संस्करण**:2013)

- प्रश्न: समझने के क्रम में क्या discipline का कोई रोल नहीं है?

  उत्तर: सही जीने का कोई स्वरूप हो, उस ढंग से हम जीना शुरू कर देते हैं, तो उस ढंग से विचारने की ओर भी जाते हैं। सही जीने का स्वरूप वही व्यक्ति होगा जो सही को समझा होगा। सही जीने का स्वरूप है – समाधान–समृद्धि पूर्वक जीना। समझे हुए (अनुभव सम्पन्न जागृत मानव चेतना) व्यक्ति के जीने के स्वरूप का हम **अनुकरण–अनुसरण** करते हैं, उसके साथ शब्द को सुनते हैं, शब्द से अर्थ की ओर जाते हैं। **अनुकरण–अनुसरण** करना अध्ययन के लिए प्रेरणा है। अर्थ की ओर जाने पर उसके स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु से तदाकार होने का प्रवृत्ति जीवन में रहता ही है। यही 'मनन' प्रक्रिया है। तदाकार होने पर साक्षात्कार हो गया, बोध हो गया, अनुभव हो गया। अनुभव होने पर हम तद्रूप हो गए। तद्रूपता प्रमाण है। (**अध्याय : 3.1, पृष्ठ नंबर: 283–284**)

- अनुभव के पहले प्रमाण नहीं है। अनुभव के पहले अनुकरण अनुसरण विधि से "अच्छा लगने" की स्थिति में आ जाते हैं, "अच्छा होना" नहीं होता। केवल **अनुसरण** अनुकरण पर्याप्त नहीं है। जीने में प्रमाणित होने पर ही "अच्छा होना" होता है। (**अध्याय :3.1, पृष्ठ नंबर: 294**)

आज्ञापालन

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 23/04/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 29/10/2019

आज्ञापालन की परिभाषा

- जागृत मानव परंपरा में, से, के लिए संतानों का पाँच वर्ष के आयु से दस वर्ष तक अनुसरण सहयोग प्रवृत्ति सहज दृष्टि–आज्ञापालन।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृष्ठ नंबर:43)

अनुक्रमणिका

"आज्ञापालन" को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ६२
2. मानव कर्म दर्शन ६४
3. मानव अभ्यास दर्शन ६४
4. मानव अनुभव दर्शन ६४
5. समाधानात्मक भौतिकवाद ६४
6. व्यवहारात्मक जनवाद ६५
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद ६६
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र ६७
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र ६९
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान ७०
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ७१
12. जीवन विद्या –एक परिचय ७२
13. विकल्प ७२
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु ७२
15. मानवीय आचरण सूत्र ७२
16. संवाद – भाग १ ७३
17. संवाद – भाग २ ७४

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- न्याय से पद, उदारता से धन, दया पूर्वक बल, सच्चरित्रता से रूप तथा विज्ञान व विवेक से बुद्धि, निष्ठा से अध्ययन, कर्तव्य से सेवा, संतोष से तप, स्नेह से लोक, प्रेम से लोकेश, **आज्ञापालन** से रोगी एवं बालक की सफलता एवं कल्याण सिद्ध है। **(अध्याय : 14, पृष्ठ नंबर: 103)**
- माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं. उदाहरणार्थ शैशव–अवस्था में केवल बालक का लालन–पालन ही माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं. कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं। इसी अवस्था में **आज्ञापालन** प्रवृत्ति, अनुशासन, शुचिता, संस्कृति का **अनुकरण**, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं. सभ्यता के मूल में हर माता–पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिए तन, मन, एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं। संतान के लिए हर माता–पिता अपने मन में अभ्युदय तथा समृद्धि की ही कामना रखते हैं, इन सबके मूल में कृतज्ञता की वांछा रहती है। जो संतान माता–पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं। **(अध्याय: 16 (i), पृष्ठ नंबर: 122)**
- भाई–बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है. पहचान होते ही परस्परता में सचाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत–मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में **आज्ञापालन** सहयोग और अनुसरण जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है. यही मित्रों के साथ भी होता है. जब भाई–बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ **आज्ञापालन** सम्बन्ध रहता ही है. अनुसरण भी इन्ही दो पक्षों से जुड़ा रहता है. मूल्यांकन में यह सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है. जहां तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की सम्भावना बनी ही रहती है।

  कौमार्य और युवावस्था के बीच भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन के परस्परता में अनुशासन की बात आती है. अनुशासन आज्ञा पालन के क्रम में एक पक्षीय हो पाते हैं. अनुशासन गुरुजनों व अभिभावकों से जीने में प्रमाणित रहने के आधार पर, अनुशासन बोध संतानों में होना स्वाभाविक है. इन्ही तथ्य के आधार पर, हर मानव संतान अनुशासन को अपने विचारों से जोड़ना शुरू करता है. उसी के साथ आवश्यक–अनावश्यक, उपयोगी–अनुपयोगी

विधा में भी वैचारिक प्रयुक्तियाँ होना स्वाभाविक रहता है. इस प्रकार अनुशासन आवश्यकता, उपयोगिता के आधार पर स्वीकृत होना शुरू होता है. शनैः शनैः हर मानव संतान क्रम से अनुशासन में दक्ष होना पाया जाता है.

इन सभी विधाओं में मानव संतान गुजरता हुआ अर्थात **आज्ञापालन**, अनुशासन प्रक्रिया से सोच–विचार प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ अपने आप में निश्चय की प्रक्रियाएं आरम्भ होते ही यही निश्चयन सुस्थिर होना ही **आज्ञापालन** और अनुशासन के आशय रहता ही है.

जैसे ही युवावस्था में पहुँचते हैं, स्वाभाविक रूप में स्वानुशासन का प्रमाण आवश्यकता के रूप में होता ही है. यही अभ्युदय का प्रमाण होना पाया जाता है. स्वानुशासन सर्वतोमुखी समाधान के रूप में ही प्रमाणित होता है. यही मानव संचेतना की अपेक्षा और सार्थकता है. यह शिक्षा–संस्कार कार्यों से लोक–सुलभ होना पाया जाता है. जागृत मानव परंपरा में ही मानवीय शिक्षा संस्कार सार्थक होना पाया जाता है. इस विधि से कार्य–व्यव्हार विचार संपन्न होते हुए भाई–बहन–मित्र संबंधों में विश्वास पूर्वक सम्मान व मूल्यांकन पूर्वक परस्परता में स्नेह मूल्य को सदा–सदा प्रमाणित करना होता है. इस विधि से इन संबंधों में विश्वास, सम्मान, स्नेह मूल्य प्रधान रहता है, साथ ही प्रेम मूल्य स्पष्ट होना भावी रहता है. **(अध्याय : 16 (i), पृष्ठ नंबर: 124–125)**

- रोगी तथा बालक के साथ **आज्ञापालन** के रूप में सुखानुभूतियाँ सिद्ध हुई हैं. **(अध्याय : 16 (i), पृष्ठ नंबर: 129)**
- ज्ञानानुभूति के लिए सह–अस्तित्व रूपी ईष्ट के प्रति निर्भ्रम ज्ञान, अनन्यता, अनुराग तथा प्रेम के योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता का होना अनिवार्य है, जो साधक के न्याय पूर्ण व्यवहार, समाधान पूर्ण विचार से तथा किसी अनुभव–पूर्ण मानव के **आज्ञापालन** में पूर्ण निष्ठा से जागृति प्रमाणित होती है. **(अध्याय : 18, पृष्ठ नंबर: 161)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(**संस्करण**: 2009, **मुद्रण**: 2017)

- मानव के हर रंग रूप संबंध में समानता संवाद का दूसरा मुद्दा बनता है हर मानव अपने पहचान को बनाए रखने के लिए बाल्यकाल से ही प्रयत्नशील है पहचान प्रस्तुत करने की प्रवृतियां विभिन्न तरीके से प्रस्तुत होती हुई आंकलित होती है परिस्थितियां भिन्न–भिन्न रहते हुए प्रवृत्तियों में समानता होती ही है इसी के साथ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक संरक्षण में पोषण में भरोसा रखने वाली प्रवृत्ति मिलती है। संरक्षण पोषण के क्रम में न्याय की अपेक्षा प्रस्फुटित होती हुई देखने को मिलती है। किशोर अवस्था तक सही कार्य व्यवहार करने की इच्छाएँ **आज्ञापालन**, अनुसरण, सहयोग के **अनुकरण** के रूप में प्रवृत्तियों को देखा जाता है यह बहुत अच्छे ढंग से समझ में आता है यह जन चर्चा का विषय है। संवाद के लिए यह दोनों मुद्दों अच्छे ढंग से सोचने, परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण करने व्यवहार विधि से विचारों को सम्बद्ध करने में काफी उपकारी हो सकते हैं। तीसरा मुद्दा देखने को मिलता है कि हर मानव संतान शिशुकाल से ही जब से बोलना जानता है तब से जो भी देखा सुना रहता है उसी को बोलने में अभ्यस्त रहता है। इस ढंग से हर मानव संतान बाल्यकाल से ही सत्य वक्ता होना आकलित होता है। जबकि सत्यबोध उसमें रहता नहीं है। शब्दों को बोलना ही बना रहता है। इससे यह भी पता लगता है मानव परंपरा का दायित्व है कि मानव संतान को सत्य बोध कराएं। इसी के साथ सही कार्य, व्यवहार का प्रयोजन बोध सहित पारंगत बनाने की आवश्यकता है। न्याय बोध हर संतान को कराने का दायित्व परंपरा के पक्ष में ही जाता है। इस ढंग से बच्चों के लिए प्रेरक साहित्यों, कविताओं की रचना करने के लिए ये तीनों सार्थक प्रवृत्तियाँ है मानव में प्रवृतियां प्रयोग और परिक्षण बहुआयामों में होना देखा गया है। ये सब जन चर्चा के लिए बिन्दुएँ हैं।... (**अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर**: 37–38)

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- Not found

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- जागृत मानव परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी किताब के बोझ से छुटकारा अथवा कम होने की प्रणाली बनेगी क्योंकि जागृतिपूर्ण परंपरा में समझ के करो विधि पूर्णतया प्रभावशील रहता है। इसी के साथ समझ में ''जीने दो जीयो'' वाला सूत्र भी सहज ही चरितार्थ होता है। समझने का मूल स्रोत, पहला स्रोत जिस परिवार में जो शिशु अर्पित रहता है वही परिवार सर्वाधिक जिम्मेदार होता है। इस तथ्य पर हम सुस्पष्ट हो चुके हैं कि हर स्वायत्त मानव परिवार मानव के रूप में प्रमाणित होता है। यही जागृत मानव प्रतिष्ठा है। यह मौलिक अधिकार में गण्य है। ऐसे जागृत परिवार में अर्पित हर संतान के लिये जागृति सहज शिक्षा–संस्कार के लिये हर अभिभावक पर्याप्त होना पाया जाता है। शिशुकाल में **आज्ञापालन–अनुसरण** विधि हर शिशुओं में प्रभावशील रहता है। यही अपने को अर्पित करने का साक्ष्य है। अर्पित स्थिति में हर सम्बोधन, हर प्रदर्शन, हर प्रकाशन **अनुकरण** योग्य रहता ही है। इसी अवस्था में जागृति क्रम में संयोजित करना ही संस्कार–शिक्षा का तात्पर्य है। (**अध्याय** : 6, **पृष्ठ नंबर**: 178–179)
- जन्मदिन उत्सव संस्कार – जन्मदिनोत्सव को सम्पादित करने की उमंग, उमंग का तात्पर्य उत्साह और प्रसन्नता सहित आशय को व्यक्त करने से है। आशय जन्म दिवस का स्मरण बीते हुए वर्षों की गणना से सम्बन्धित रहता है। यह सर्वविदित है। इस क्रम में शैशवावस्था तक जीवन जागृति कामना सहित मानवीयतापूर्ण आचरण सम्पन्न होने, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन ज्ञान में पारंगत होने के कामनाओं सहित चर्चा, वार्तालाप, कामना गीत के साथ गायन, नृत्य, वाद्य के साथ उत्सव सम्पन्न करने का कार्यक्रम हर शैशवावस्था तक उत्सव में भाग लेने वाले हर व्यक्ति से हर व्यक्ति को सम्मान व्यक्त करता हुआ शिशु और आशय आकांक्षा सहित आशीषों को प्रस्तुत करने वाले हर व्यक्ति उत्सव में भागीदारी के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे उत्सव मानव सहज जागृति परंपरा का ही पुनर्उद्धार ही रहता है। ऐसी जन्मदिनोत्सव को जैसा ही शैशवावस्था से कौमार्य अवस्था आता है अथवा जिस जन्मदिनोत्सव तक अपने मूल्यांकन करने में सक्षम हो जाते हैं, जिसको अभिभावक भले प्रकार से मूल्यांकन कर सकते हैं। इसी जन्मदिवस से हर मानव संतान से अपना मूल्यांकन कराने और सत्यापित करने की विधि अपनाना आवश्यक रहता ही है। ऐसा सत्यापन सहज अभिव्यक्ति की पुष्टि में उत्साह और प्रसन्नता को व्यक्त करने का समारोह बंधु–बांधव और अभिभावक मित्रों के साथ–साथ अनुभव करना बनता है। ऐसी सम्पूर्ण अनुभूति का आधार का मापदण्ड जीवन जागृति, मानवीयतापूर्ण आचरण शैशवावस्था से किया गया **आज्ञापालन**, सहयोगवादी कार्यकलाप, **अनुसरण** किया गया कार्यकलाप अर्थात् अभिभावक एवं आचार्यों के साथ किया गया **अनुसरण** क्रियाकलाप और उसके प्रयोजनों के साथ उन–उनके सभी अभिमत किशोरावस्था से ही व्यक्त होना स्वाभाविक रहता ही है। स्वयं स्फूर्त आशा, आकांक्षा के संदर्भ में भी प्रोत्साहनपूर्वक संप्रेषित करने का अवसर प्रदान करना

उत्सव समारोह का एक कर्तव्य के रूप में होना पाया जाता है। मुख्य रूप में जिनका जन्मदिनोत्सव मनाया जाता है उनका उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजन सम्बन्धी मूल्यांकन पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान आकर्षित करने का कार्यक्रम जन्मदिनोत्सव का प्रधान उद्देश्य और कार्यक्रम है। इस प्रकार जन्मदिनोत्सव के सम्पूर्ण अवयव स्पष्ट हो जाता हैं। इसी के साथ यह भी परस्पर प्रेरणा का आधार होता है कि जन्मदिनोत्सव जिनका मनाया जाता है उस समय उनका साथी, मित्र, भाई सब अपने–अपने सत्यापन विधि को अपनाना मानव परंपरा के लिये आवश्यकीय मौलिक प्रयोजन सिद्ध होना सहज है। (**अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 277–279**)

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- परिवार और व्यवस्था अविभाज्य है। परिवार हो, व्यवस्था नहीं हो और व्यवस्था हो परिवार नहीं हो, ये दोनों स्थितियाँ भ्रम का द्योतक है। पूर्ववर्ती आदर्शवादी और भौतिकवादी विचारों के आधार पर सभी शक्ति–केन्द्रित शासन अवधारणाएँ परिवार के साथ सूत्रित होना संभव नहीं हो पाई। हर परिवार में कुछ संख्यात्मक व्यक्तियों को और उनके परस्परता में सेवा, **आज्ञापालन**, वचनबद्धता को पालन करता हुआ, निर्वाह किया हुआ भी उल्लेखित है, दृष्टव्य है। इनमें श्रेष्ठता की ऊचाइयाँ भी उल्लेखों में दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से किसी आदर्श का गति अनेक नहीं हो पायी। यही बिन्दु में हम और एक तथ्य पर नजर डाल सकते हैं। बहुतायत रूप में अच्छे आदमी हुए हैं और अच्छी परम्परा नहीं हो पायी।... **(अध्याय :, पृष्ठ नंबर: 183)**

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- जन्म से मानव संतान **अनुकरण**–अनुसरण करती हुई देखने को मिलती है। यही **आज्ञापालन** और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है। परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक–वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण शिक्षा–संस्कार सुलभ होता है। ऐसी स्थिति पाने के लिए जागृति विधि से, शिक्षा–संस्कार को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है। फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 82)**
- मानव परम्परा में प्रामाणिकता ही प्रधान वैभव है। जागृति ही इसका मूल स्रोत है। इसका धारक–वाहक केवल मानव है। सम्पूर्ण प्रमाणों की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषणा का आधार भी केवल मानव है। मानव संतानों में प्रयासोदय, शैशव अवस्था में ही देखने को मिलता है। उसी के साथ–साथ **आज्ञापालन** और सहयोग प्रवृत्ति प्रकारान्तर से सभी मानव संतानों में देखने को मिलती है। इसी के साथ **अनुकरण** कार्यों में प्रमाणित करने का (अथवा **अनुकरित** कार्यों को प्रमाणित करने का) सिलसिला दिखाई पड़ता है। **(अध्याय : 5 –(5.1), पृष्ठ नंबर: 82)**

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण: 2007)

- **आज्ञा–पालन** स्वीकृति सहयोग, **अनुकरण** कार्य के अर्थ में सार्थक है। (**अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 158**)

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- Not found

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- Not found

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- Not found

सन्दर्भ: संवाद भाग १

- रहस्यमय आस्था का मतलब है बिना जानते हुए मान लेना। रहस्य का पूजा करो! आस्था करो! शास्त्र में जो लिखा है वह मान लो! **आज्ञापालन**, उपदेश, भाषण को मान लो! आस्था के आधार पर जीना आज भी जनसामान्य को सुविधा संग्रह की तुलना में ज्यादा अच्छा लगता है। लेकिन अच्छा लगने मात्र से अच्छा हुआ नहीं। आस्था का प्रमाणीकरण नहीं हुआ। हम आस्था ही करते रह गए। यही आदर्शवाद की वैचारिक फंसावट है। इसका निदान है माने हुए को जान लो, जाने हुए को मान लो। बिना जाने हुए मान लेना रूढ़ी है। जान कर मानते हुए जीना प्रमाण है। (**अध्याय : , पृष्ठ नंबर:** 139)
- आदर्शवादी विधि में **आज्ञापालन** उपदेश और तर्क विहीन अनुशासन विधि से धर्म गद्दियों द्वारा संचालित प्रणालियां और उन्हीं का गौरव सम्मान करते हुए भी घुटन का कारण बना रहा। इन्हीं गतिविधियों के साथ विज्ञान संसार स्थापित हुआ विज्ञान विधि क्रम में तर्क का समुचित दरवाजा खुल गया सभी तर्क करने की छूट मिली विज्ञान विधि से निर्मित औजारों और दमनकारी विध्वंसकारी औजारों के प्रति शासन परंपराएं विवश होती गई। विज्ञान विधि के क्रम में प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा बहुमुखी उत्पादन कार्यों को साध लिया गया। इस तरह जो उत्पादित वस्तुएं सभी परंपराओं के लिए आकर्षक होना स्वीकार हुआ। इस हौसले के साथ विज्ञान शिक्षा का लोकव्यापीकरण हुआ जिसको व्यक्तिवाद/ समुदायवाद न कहते हुए भी वह "विशेषज्ञता और पेटेंटी (intellectual property right) में ग्रस्त हो गया। इस तरह विज्ञान विधि व्यापार और लाभ से संलग्न हो गई। विज्ञान शिक्षा के लोकव्यापारीकरण होने से लाभोन्मादी भोगोन्मादी ,कामोन्मादी शिक्षा पूरे संसार में फैला। इस तरह उन्माद त्रय "प्रलोभन" का आधार हुआ और सामरिक तंत्र और कार्यक्रम "भय" का आधार हुआ। विज्ञान युग के पहले भी मानव जाति "भय" और "प्रलोभन" से ग्रसित रहा ही है। भले ही वह पहले स्वर्ग के लिए "प्रलोभन" और "नर्क" के लिए "भय" और पाप– पुण्य शब्दों की छाया में पला हो। विज्ञान विधि से पूर्णतया सुविधा संग्रह के लिए प्रलोभन और युद्ध संग्राम ध्वंस–विध्वंस तथा दंड विधानों के प्रति भय प्रभावित हो गया। (**अध्याय : , पृष्ठ नंबर:** 224)

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- **आज्ञापालन और कृतज्ञता**

अध्ययन कराना स्वेच्छा से स्वयंस्फूर्त होता है। अध्ययन करना यह स्वेच्छा से होता है इसमें कोई विकसित चेतना में पारंगत होने के पश्चात भय प्रलोभन शामिल नहीं है। इसमें कोई "**आज्ञापालन**" भी शामिल नहीं है आज के समय में **आज्ञापालन** तो कोई नहीं करेगा। आज्ञा का पालन होना ही नहीं है तो आज्ञा देने का क्या फायदा? हमारे समय तक **आज्ञापालन** जो होना था हो गया।

समझने के लिए प्रस्ताव है उस से आप संतुष्ट होते हैं तो उसको समझने के लिए आप की प्रयत्न है आज के समय कृतज्ञता तो मूल्यों के रूप में रहेगा लेकिन **आज्ञापालन** होना बहुत मुश्किल है यदि उपकृत होते हैं तो कृतज्ञता सर्वाधिक लोगों में है। प्रचलित विज्ञान विधि से चलने पर कृतज्ञता की बात नहीं आती। कृतघ्नता होती है। जो सिखाता है उसी के प्रति विरोध और शत्रुता की बात आती है। अभी आप स्कूल कॉलेज में अध्यापकों पर विद्यार्थियों द्वारा हमला करने गोली से मारने तक की बात सुनते ही हैं। आज हमारे देश में लाभोन्मादी, भोगोन्मादी, कामोन्मादी शिक्षा के लिए सभी तत्पर हैं। उसको चाहते हैं तभी ऐसा है ऐसे में यह सह अस्तित्ववादी प्रस्ताव को रख रहे हैं इसमें से कुछ पुण्य शीलों को यह अपील हो रहा है। प्रस्ताव आने पर लोगों का ध्यान धीरे–धीरे इसकी तरफ जा रहा है आदमी में सहीपन की अपेक्षा है तभी ऐसा है।

(दिसंबर 2008 अमरकंटक) **(अध्याय :1.2, पृष्ठ नंबर: 90–91)**

अनुशासन

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 28/04/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 29/10/2019

अनुशासन की परिभाषा

- यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज सम्पन्न होने का क्रम।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृष्ठ नंबर: 15)

अनुक्रमणिका

"अनुशासन" को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ७७
2. मानव कर्म दर्शन ७९
3. मानव अभ्यास दर्शन ८०
4. मानव अनुभव दर्शन ८१
5. समाधानात्मक भौतिकवाद ८२
6. व्यवहारात्मक जनवाद ८३
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद ८४
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र ८५
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र ८७
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान ८८
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ८९
12. जीवन विद्या –एक परिचय ९०
13. विकल्प ९०
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु ९०
15. मानवीय आचरण सूत्र ९१
16. संवाद – भाग १ ९२
17. संवाद – भाग २ ९२

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- नियम: – क्रिया के संरक्षण एवं **अनुशासन** रीति ही नियम है। (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 26**)
- गठन: – एक से अधिक अंश के पहचानने–निर्वाह करने के नियम द्वारा **अनुशासित** एवं सीमाबद्ध निश्चित क्रिया को अक्षुण्णता प्रदान करने वाली प्रक्रिया ही गठन है. (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर: 30**)
- भौतिक क्रिया परिणामी है, अतः सामयिक सिद्ध है. समस्त क्रियाएँ नियमों से **अनुशासित** तथा संरक्षित परिलक्षित होती हैं. नियम अपरिवर्तनीय है, इसलिए नियम सत्य एवं नित्य सिद्ध है. (**अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर: 45**)
- परस्पर अनुशासित (नियंत्रित) या अनुवर्तित लोक–व्यूह की ब्रह्माण्ड संज्ञा है, जिसमे अनेक सौर–व्यूह हैं. (**अध्याय: 12, पृष्ठ नंबर: 85**)
- माता एवं पिता हर संतान से उनकी अवस्था के अनुरूप प्रत्याशा रखते हैं. उदाहरणार्थ शैशव–अवस्था में केवल बालक का लालन–पालन ही माता–पिता का पुत्र–पुत्री के प्रति कर्त्तव्य एवं उद्देश्य होता है तथा इस कर्त्तव्य के निर्वाह के फलस्वरूप वह मात्र शिशु की मुस्कुराहट की ही अपेक्षा रखते हैं. कौमार्यावस्था में किंचित शिक्षा एवं भाषा का परिमार्जन चाहते हैं। इसी अवस्था में आज्ञापालन प्रवृत्ति, **अनुशासन**, शुचिता, संस्कृति का **अनुकरण**, परंपरा के गौरव का पालन करने की अपेक्षा होती है। कौमार्यावस्था के अनंतर संतान में उत्तम सभ्यता की कामना करते हैं. सभ्यता के मूल में हर माता–पिता अपने संतान से कृतज्ञता (गौरवता) पाना चाहते हैं तथा केवल इस एक अमूल्य निधि को पाने के लिए तन, मन, एवं धन से संतान की सेवा किया करते हैं। संतान के लिए हर माता–पिता अपने मन में अभ्युदय तथा समृद्धि की ही कामना रखते हैं, इन सबके मूल में कृतज्ञता की वांछा रहती है जो संतान माता–पिता एवं गुरु के कृतज्ञ नहीं होते हैं, उनका कृतघ्न होना अनिवार्य है, जिससे वह स्वयं क्लेश परंपरा को प्राप्त करते हैं और दूसरों को भी क्लेशित करते हैं। (**अध्याय: 16 (i), पृष्ठ नंबर: 122**)
- भाई और बहन सम्बन्ध: –

भाई और बहन के सम्बन्ध को सौहार्द भाव के नाम से जाना जाता है. इसमें परस्पर जागृति की प्रत्याशा एवं उत्साह है. एक की जागृति, दूसरे पक्ष की जागृति को आप्लावित कर देता है. जैसे यदि कोई बहन किन्ही विशेष सदगुणों से संपन्न है तो इसके कारण बहन स्वयं में जितना आप्लावित है उतना ही अथवा उससे अधिक आप्लावन भाई में पाया जाता है. इसी प्रकार भाई का भाई के साथ और बहन का बहन के साथ पाया जाता है.

भाई–बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है. पहचान होते ही परस्परता में सच्चाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत–मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में आज्ञापालन सहयोग और अनुसरण जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है. यही मित्रों के साथ भी होता है. जब भाई–

बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ आज्ञापालन सम्बन्ध रहता ही है. अनुसरण भी इन्ही दो पक्षों से जुड़ा रहता है. मूल्यांकन में यह सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है. जहां तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की सम्भावना बनी ही रहती है.

कौमार्य और युवावस्था के बीच भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन के परस्परता में **अनुशासन** की बात आती है. **अनुशासन** आज्ञा पालन के क्रम में एक पक्षीय हो पाते हैं. **अनुशासन** गुरुजनों व अभिभावकों से जीने में प्रमाणित रहने के आधार पर, **अनुशासन** बोध संतानों में होना स्वाभाविक है. इन्ही तथ्य के आधार पर, हर मानव संतान **अनुशासन** को अपने विचारों से जोड़ना शुरू करता है. उसी के साथ आवश्यक–अनावश्यक, उपयोगी–अनुपयोगी विधा में भी वैचारिक प्रयुक्तियाँ होना स्वाभाविक रहता है. इस प्रकार **अनुशासन** आवश्यकता, उपयोगिता के आधार पर स्वीकृत होना शुरू होता है. शनैः शनैः हर मानव संतान क्रम से **अनुशासन** में दक्ष होना पाया जाता है.

इन सभी विधाओं में मानव संतान गुजरता हुआ अर्थात आज्ञापालन, **अनुशासन** प्रक्रिया से सोच–विचार प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ अपने आप में निश्चय की प्रक्रियाएं आरम्भ होते ही यही निश्चयन सुस्थिर होना ही आज्ञापालन और **अनुशासन** के आशय रहता ही है.

जैसे ही युवावस्था में पहुँचते हैं, स्वाभाविक रूप में स्वानुशासन का प्रमाण आवश्यकता के रूप में होता ही है. यही अभ्युदय का प्रमाण होना पाया जाता है. स्वानुशासन सर्वतोमुखी समाधान के रूप में ही प्रमाणित होता है. यही मानव संचेतना की अपेक्षा और सार्थकता है. यह शिक्षा–संस्कार कार्यों से लोक–सुलभ होना पाया जाता है. जागृत मानव परंपरा में ही मानवीय शिक्षा संस्कार सार्थक होना पाया जाता है. इस विधि से कार्य–व्यव्हार विचार संपन्न होते हुए भाई–बहन–मित्र संबंधों में विश्वास पूर्वक सम्मान व मूल्यांकन पूर्वक परस्परता में स्नेह मूल्य को सदा–सदा प्रमाणित करना होता है. इस विधि से इन संबंधों में विश्वास, सम्मान, स्नेह मूल्य प्रधान रहता है, साथ ही प्रेम मूल्य स्पष्ट होना भावी रहता है. **(अध्याय: 16 (ii), पृष्ठ नंबर: 124–125)**

- प्रजा का जीवन समग्र व्यवस्था में भागीदारी से तथा **अनुशासन** एवं नियम को स्वीकारने से। **(अध्याय: 16 (ii), पृष्ठ नंबर: 129)**
- आत्मा के मध्यस्थ क्रिया होने के कारण – बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन तथा शरीर; आत्मा द्वारा **अनुशासित** तथा नियंत्रित होना अस्तित्व सहज है. इस नियंत्रण के विरोध के क्रम में जो प्रयास है, वह ही विषमता को जन्म देता है. **(अध्याय: 16 (ii), पृष्ठ नंबर: 140)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- स्वतंत्र सक्रियता में नियंत्रण–क्षमता स्वायत्त, अनुकरण–क्षमता में स्वेच्छा से नियन्त्रित होने की क्षमता, अनुसरण सक्रियता में **अनुशासित** होने की क्षमता समाहित है। (**अध्याय: 1, पृष्ठ नंबर: 22–23**)
- जागृत मानव जिज्ञासु पर विश्वास करता है और जिज्ञासु मानव के साथ **अनुशासित** रहता है। (**अध्याय:1 , पृष्ठ नंबर: 26**)
- अधिभौतिकी सीमा में उत्पादन प्रधान व्यवहार, अधिदैविक सीमा में व्यवहार प्रधान उत्पादन, अध्यात्मपूर्ण जीवन में अनुभवमूलक विचार, व्यवहार एवं उत्पादन क्रम प्रत्यक्ष है। इसलिये व्यवहार एवं व्यवसाय अध्यात्मपूर्ण जीवन में संयत एवं नियंत्रित, अधिदैविक जीवन में व्यवस्थित एवं **अनुशासित** तथा भौतिक जीवन में अनानुशासित एवं अव्यवस्थित पाया जाता है। इसलिये अध्यात्मपूर्ण जीवन में ही मनुष्य के चारों आयामों की एकसूत्रता पाई जाती है। (**अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 34**)
- आयुर्वेद विधि से उसकी कई विधि से रोग के बलाबल को पहचानना, उसी के अनुसार औषधि को पहचानना, वन औषधि के रूप में, खनिजों के रूप में, जीवों से उपलब्ध औषधि के रूप में पहचानना। इनका योग, संयोग, परिपाक विधि से औषधि के बलाबल को पहचानना, रोग से अधिक बलशाली औषधि का प्रयोग करना, यही कर्म अभ्यास रोग को पहचानने से रोग चिकित्सा तक **अनुशासित** रहना पाया जाता है। इसमें मूल मुद्दा यही है, हर आयुर्वेदज्ञ को परिश्रम करने की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरूप–

रोगों को पहचानने	औषधियों को पहचानने
रोगों के बलाबल को पहचानने	औषधियों के बलाबल को पहचानने
पथ्य परहेज को पहचानने	अनुपान को पहचानने

के सम्मलित रूप में जो प्रयोग कर पाते हैं इसे ही कर्माभ्यास कहते हैं। ये पूरा का पूरा ज्ञान, विज्ञान विधि से चलकर अनुपान, पथ्य परहेज तक पहुँच पाते हैं, इसके फल परिणाम के आधार पर परम्परा के रूप में प्रमाण तक पहुँच पाते हैं। (**अध्याय: 16, पृष्ठ नंबर: 148**)

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में ही अनुभव में प्रवृत्त रहने, अनुभव से प्रभावित होने और प्रभावित करने तथा अनुभव के लिए जागृतिशील रहने की संभावना एवं अवसर है, क्योंकि अनुभव आत्मा में ही होता है, अनुभव मध्यस्थता है। यह उत्पादन में नियम, व्यवहार में न्याय, विचार में समाधान एवं अनुभव में सत्य है साथ ही मानव जीवन में, से, के लिए प्रमाण भी है। सम और विषम क्रियाएं मध्यस्थ क्रिया से **अनुशासित** है ही, साथ ही अनुसरण, **अनुकरण** व अनुगमन के लिए भी बाध्य हैं। (**अध्याय :1 , पृष्ठ नंबर: 14–15**)
- आत्मानंद जीवन में एक महत उपलब्धि है। यह प्रत्यावर्तन सिद्धि है। आत्मानंद प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। मानवीयतापूर्ण जीवन से समृद्ध होने के अनन्तर ही प्रत्यावर्तन प्रक्रिया सम्पन्न होता है। **आत्मानुशासित** जीवन का प्रतिष्ठित होना ही प्रत्यावर्तन का प्रधान लक्षण है। **आत्मानुशासित** जीवन स्वतंत्रतापूर्वक मानवता को अभिव्यक्त करता है। साथ ही देव मानव पद में प्रतिष्ठित होता है। देव मानव में निवृत्ति परिचय होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही मध्यस्थ जीवन स्थापित होता है। यह स्वतंत्रता का प्रधान कारण है। मानव स्वतंत्रता के लिए अनादिकाल से प्रतीक्षारत है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर स्वभावत: मानव स्वतंत्र होता है। यही देव मानव पद है। देवमानव मानव के लिए मार्गदर्शक होता है। प्रत्यावर्तन के अनन्तर ही आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से चित्त, चित्त से वृत्ति एवं वृत्ति से मन **अनुशासित** होता है। मन से मेधस, मेधस से इंद्रिय व्यापार संपन्न होता है। इस पद्धति से **आत्मानुशासित** जीवन प्रकट होता है। (**अध्याय :15 , पृष्ठ नंबर: 173**)

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016)

- N o t F o u n d

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- प्रत्येक परमाणु क्रिया अपने परमाणु अंशों के गतिपथ सहित वैभवित है। यही गतिपथ उस परमाणु की नियन्त्रण रेखा भी हैं और सीमा भी है। ऐसे गतिपथ की सीमा में प्रत्येक परमाणु अपने में समाहित सम्पूर्ण परमाणु अंशों के **अनुशासन** समेत परिभाषित होता हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक परमाणु में समाहित प्रत्येक परमाणु अंश अपनी परस्परता में एक निश्चित दूरी में अपने अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए **अनुशासन** को, गठन के अंगभूत कार्य के रूप में प्रकाशित करते हैं। ऐसे प्रत्येक परमाणु में अंशों का घटना बढना देखा जाता है। (**अध्याय : 4, पृष्ठ नंबर:** 50)
- समाधान ही विभव का आधार हैं। समाधान पूर्वक ही प्रत्येक विकास की कड़ी अपने आप में प्रकाशित होती हैं। यही समाधान नित्य परम्परा और त्राण तथा प्राण होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि समाधान के पद में ही विकास और उसकी निरन्तरता का वैभव है। इस प्रकार मध्यस्थ क्रिया का स्वयं व्यवहारिक समाधान के रूप में नित्य प्रभावशील होना ही स्थिति के अर्थ को स्पष्ट कर देता है। समविषमात्मक आवेश निरन्तर समस्या का ही प्रकाशन हैं इस तथ्य को हृदयंगम करने पर असंदिग्ध रूप में स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण प्रकृति स्थिति में स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही रहती हैं जो मध्यस्थ क्रिया ''आत्मा" के **अनुशासन** में होने वाली क्रिया है। यही **अनुशासन** मध्यस्थ क्रिया बल के रूप में अनुभव, शक्ति के रूप में प्रामाणिकता होती है। यह चैतन्य क्रिया की अभिव्यक्ति में होने वाला वैभव है। प्रत्येक चैतन्य क्रिया की प्रामाणिकता प्रकाशित होने की संभावना रहती हैं। उन संभावनाओं को सर्व सुलभ, सहज सुलभ बना लेना ही पुरुषार्थ का तात्पर्य है। शिक्षा पूर्वक अथवा प्रबोधन पूर्वक प्रामाणिकता आदान–प्रदान करने की वस्तु है। चैतन्य–प्रकृति में ही समाधान की नित्य तृषा का होना एवं समाधानपूर्वक नित्य तृप्ति होना पाया जाता है। समाधान और उसकी निरन्तरता के अर्थ में ही सम्पूर्ण पदार्थ और संबंध का निर्वाह हो पाता है। समाधान ही जीवन सन्तुष्टि का स्रोत होने के कारण समाधान और प्रामाणिकता की परम्परा में ही चैतन्य–प्रकृति की परम्परा अथवा सम्पूर्ण चैतन्य–प्रकृति के तृप्त होने की व्यवस्था है। इस निष्कर्ष पर आते हैं कि चैतन्य–प्रकृति में आदान–प्रदान होने वाली, पहचानने और निर्वाह करने की संयुक्त संप्रेषणा की स्वीकृति ही बोध के नाम से जानी जाती हैं। इसी को हृदयंगम कहा जाता हैं और ऐसा बोध ही अवधारणा है। (**अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर:** 84–85)

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- जहाँ तक गणतंत्र–प्रजातंत्र–समाजतंत्र किसी भी नाम से जनमत के आधार पर जो व्यक्ति गद्दी में बैठ जाता है उन सब का कमोवेशी कार्यकलाप का तरीका मूलतः एक सा होना बनता है अर्थात् विशेष हो जाता है। सभी राज्य शासन–प्रशासन के लिये संविधान बना ही रहता है। ऐसे सभी संविधानों में तीन मुद्दे प्रधान है। गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। यह प्रायः सभी राजशासन की गति–प्रवृत्ति और दिशा है। पर्याप्त जन सुविधा, व्यक्ति विकास, समानता का अधिकांश लोग आश्वासन देते हुए जनमत प्राप्त करते हैं, गद्दी पर बैठ जाते हैं। जबकि संविधान के अनुसार ऊपर कही हुई प्रवृत्तियाँ, **अनुशासनों** की आवाज को दबा देती है। उसी के साथ–साथ वोट और नोट का गठबंधन, जनमत अर्जन समय से ही पीछे पड़ा रहता है। सर्वोच्च सत्ताधारी ही सत्ता का आबंटन करने में सक्षम होना संविधान मान्य रहता ही है। आबंटन के उपरान्त कुछ लोगों के लिये जिनको आबंटन में सत्ता हाथ लग गई है, उनमें और उनसे सम्मत व्यक्ति में क्षणिक सन्तुष्टि देखने को मिलती है। **(अध्याय : 1, पृष्ठ नंबर: 11–12)**

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- Not Found

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- समारोह – मानव परंपरा ज्ञानावस्था की अभिव्यक्ति संस्कारानुषंगीय विधि से जागृति पूर्णता को प्रमाणित करने वाला होने के कारण सभी उत्सवों में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति, तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग, सुरक्षा, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करना समीचीन रहता ही है। जिसकी अक्षुण्णता होना देखने को मिलता है। अतएव अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के लिये पूरक है, सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के लिये पूरक होना देखा गया है। इसी क्रम में अखण्ड समाज का अध्ययन और अवधारणा पूर्वक अनुभव सहज होना देखा गया है। इसके लिये अर्थात् संस्कार के लिये उत्सव के प्रकारों को स्पष्ट किया जा चुका है। सार्वभौम व्यवस्था का स्वरूप सभा विधि से अखण्ड समाज का स्वरूप परिवार विधि से चरितार्थ होना देखा गया है। सभी सभाओं में समारोह सम्पन्न होना एक आवश्यकता बना रहता है। इन समारोह की प्रधान अभिव्यक्ति सभा और सभा से **अनुशासित** पाँच–पाँच समितियों का कार्यकलाप उसकी स्थिति–गति का मूल्यांकन और सभा का उद्देश्य के आधार पर सफलताओं का आंकलन मूल्यांकन हर्ष–ध्वनियों के साथ समारोह का उत्साह और प्रसन्नता का मूल्यांकन किया जाता है। हर सभा का अपने उत्सव को व्यक्त करने का निश्चित उपलब्धियों के साथ होना ही देखा गया है जैसे परिवार में समाधान; समृद्धि; परिवार समूह में न्याय, उत्पादन में समारस्यता; ग्राम मुहल्ला परिवार सभा में न्याय, उत्पादन विनिमय कार्यों में संतुलन और सामरस्यता समाधान का आधार बना रहता है। यही नित्य उत्सव का स्वरूप है। हर समारोह में, कम से कम ग्राम परिवार सभा में समारोह का सभी सम्भावनाएँ समीचीन रहता ही है।

ग्राम–मुहल्ला सभा से मनोनीत–**अनुशासित** पाँच समितियों का कार्यरत रहना स्वराज्य व्यवस्था का वैभव है। इन वैभव के सफलताओं को देखने सुनने के लिये पूरे ग्राम मुहल्लावासी को उत्सुक रहना आवश्यक है। ग्राम सभा से निश्चित नियंत्रित विधि से एक–एक समिति का मूल्यांकन कार्यक्रम का तौर–तरीका जो अपनाये गये थे उसके आधार पर सफलता का समारोह सम्पन्न करना आवश्यक रहता ही है। इसका समयावधि ग्राम सभा के समयानुसार सम्पन्न होना व्यवहारिक है। इसी के अनुसार न्याय–सुरक्षा समिति के सफलताओं को समीक्षा कर पूरा ग्रामवासियों को अवगाहन कराने का कार्य सम्पन्न किये जाने के रूप में देखने को मिलता है। इससे सम्पूर्ण ग्रामवासी न्याय–सुरक्षा सुलभ होने में विश्वस्त एवं आश्वस्त होने का अवसर समारोह समय में स्वाभाविक रूप में देखने को मिलता है। इसी उमंग के साथ भविष्य के प्रति भरोसा करना स्वाभाविक होता है। वर्तमान तक की सफलता भविष्य के प्रति आश्वस्तता का हर संगम स्थिति, गति, उत्साह और प्रसन्नता के स्वरूप में ही प्रमाणित होना देखा गया है। इसी प्रकार उत्पादन–कार्य समिति, विनिमय–कोष समिति, स्वास्थ्य–संयम कार्य समिति, मानवीयतापूर्ण शिक्षा–

संस्कार समितियों का वर्तमान तक के सफलता, भविष्य में आश्वस्त होने का सफल योजना के अवगाहन तक का समारोह प्रसन्नता में अभिभूत होना, स्वाभाविक है। ऐसी अभिभूति के साथ ही हर्ष ध्वनि सफलता का कीर्ति गायन, भविष्य में सफलता का आकांक्षा, सम्भावना सहित कर्तव्यों और दायित्वों की स्वीकृति और उसका उद्गार सहित हर्ष ध्वनि गीत–संगीत का वातावरण बनाया जाना समारोह–वैभव का प्रतिष्ठा रहेगा। अस्तु, ग्राम सभा बनाम पाँचों समितियों सहित सफलता का आंकलन अग्रिम योजनाओं का प्रकाशन समारोह का सारतत्व रहेगा। यही व्यवस्था मूलक समारोहों की महिमा है। इसी प्रकार हर स्तरीय समितियों में समारोह कार्य सम्पन्न होना स्वाभाविक रहेगा। यह विश्व परिवार पर्यन्त व्यवहारान्वयन होना देखने को मिलता है। सम्पूर्ण मानव इस धरती मे समारोह और उत्साहपूर्वक संतुष्ट होते हैं । इसकी नित्य समीचीनता जागृति परंपरा पर्यन्त बनी ही रहेगी। **(अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 291–293)**

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- आज भी यह सर्वेक्षित तथ्य है स्वायत्त विधि से जो–जो उत्पादन करते हैं वे सब अपने से उत्पादित वस्तु का सर्वाधिक सुरक्षा करते हैं, सदुपयोग करना चाहते हैं। सदुपयोग का ख्याति, यश न होने के फलस्वरूप कुंठित रहते हैं। आज की स्थिति में सदुपयोग का ख्याति न होने का एक ही कारण है व्यवस्था के स्थान पर शासन मानसिकता पूर्वक जीना। शासन मानसिकता सुविधावादी मानसिकता को कहा जाता है। हर परिवार में सर्वेक्षण से यह पता लगता है 'उत्पादन में जो सर्वाधिक पारंगत है परिवार में अपने को सुविधावादी, सुविधासेवी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।' क्योंकि भ्रमित परंपरा में इनके सम्मुख आदर्श शासन और सुविधा ही देखने को मिला रहता है। इसी क्रम में परिवार प्रधान उत्पादन कार्य में सक्रिय रहने की स्थिति में सुविधा और शासक के रूप में अपने को पाकर प्रसन्न होने का रास्ता मान लेता है। इसको दोनों विधियों से देखा गया है। महिलाएँ जिन परिवारों में उत्पादन कार्य में ज्यादा से ज्यादा प्रसक्त रहते हैं, सुविधा और शासन कार्य में उनका वर्चस्व रहता है। कोई–कोई इसको **अनुशासन** भी कहते हैं। जहाँ परिवार में पुरुष अधिकाधिक उत्पादन कार्य में सक्रिय रहता है, वहाँ का शासन, सुविधा में पुरूषों का वर्चस्व बना रहता है। तीसरी स्थिति यह भी देखी गई कि जिस परिवार में उत्पादन कार्य से भागीदारी का संबंध नहीं रह जाती है ऐसे परिवार में शासन और सुविधा का समानाधिकार की प्रवृत्ति उभरी हुई मिलती है। यह भी देखा गया है अधिकाधिक परिवार जो केवल संग्रह और भोगलिप्सा में रत रहते हैं इन्हीं मुद्दों (शासन और सुविधा) को लेकर कटुता, वितंडावाद, विरोध, विद्रोह बना रहता है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में कुण्ठाएँ दिखाई पड़ती हैं। चौथे स्थिति में प्रौद्योगिकीय क्षेत्र में वेतन भोगी अथवा मजदूरी विधि से जो कार्यरत रहते हैं वे सब नौकरी लगते तक, मजदूरी में लगते तक कार्य करने में स्वीकृति बनी रहती है। परन्तु जब कार्यरत होते हैं, अर्थात् मजदूर, वेतनभोगी जब नियमित होते हैं उसके उपरांत अधिकांश लोगों में कार्य में शिथिलता होना देखा गया है। जो वेतनमान और मजदूरीपाते हैं उनमें विपुलता की चाह बढ़ जाती है। उद्योग का नियंत्रण, लाभाकांक्षा से पीड़ित रहना, जिसको हम मैनेजमेंट कहते हैं, दूसरे भाषा से उद्योगपति भी कहते हैं, सफल उद्योग का तात्पर्य ही है अधिकाधिक लाभ प्राप्त होते रहें। लाभ का और संग्रह का कहीं तृप्ति बिन्दु ही न होना सबको विदित है। इस विधि से उद्योग में भागीदारी करने वाले निरंतर व्यथित रहना, असंतुष्ट रहना ही हाथ लग पाता है। इस बीच भय और प्रलोभन के आधार पर ही उद्योग व्यवस्था को सफल बनाने का प्रयत्न प्रौद्योगिकी के आरंभ काल से ही जुड़ा हुआ देखा गया। (अध्याय : 5, पृष्ठ नंबर: 158–160)

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(संस्करण: 2008)

- N o t   f o u n d

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण: 2007)

- **अनुशासन** स्वीकृति को सहयोग अनुसरण पूर्वक जागृति के अर्थ में सार्थक है । **(अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 158)**
- स्वायत्ता स्वयं स्फूर्त स्व–**अनुशासन** रूपी स्वत्व स्वतन्त्रता, स्वराज्य अधिकार वैभव है। **(अध्याय :12, पृष्ठ नंबर: 283)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- Not found

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- Not found

सन्दर्भ: मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2003)

- स्वायत्तता स्वयं स्फूर्त स्व–अनुशासन रूपी स्वतंत्रता, स्वराज्य वैभव है। (**अध्याय :, पृष्ठ नंबर:** 67)

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(**संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011**)

- आदर्शवादी विधि में आज्ञापालन उपदेश और तर्क विहीन **अनुशासन** विधि से धर्म गद्दियों द्वारा संचालित प्रणालियां और उन्हीं का गौरव सम्मान करते हुए भी घुटन का कारण बना रहा। इन्हीं गतिविधियों के साथ विज्ञान संसार स्थापित हुआ विज्ञान विधि क्रम में तर्क का समुचित दरवाजा खुल गया सभी तर्क करने की छूट मिली विज्ञान विधि से निर्मित औजारों और दमनकारी विध्वंसकारी औजारों के प्रति शासन परंपराएं विवश होती गई। विज्ञान विधि के क्रम में प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा बहुमुखी उत्पादन कार्यों को साध लिया गया। इस तरह जो उत्पादित वस्तुएं सभी परंपराओं के लिए आकर्षक होना स्वीकार हुआ। इस हौसले के साथ विज्ञान शिक्षा का लोकव्यापीकरण हुआ जिसको व्यक्तिवाद/ समुदायवाद न कहते हुए भी वह "विशेषज्ञता और पेटेंटी (intellectual property right) में ग्रस्त हो गया। इस तरह विज्ञान विधि व्यापार और लाभ से संलग्न हो गई। विज्ञान शिक्षा के लोकव्यापारीकरण होने से लाभोन्मादी भोगोन्मादी ,कामोन्मादी शिक्षा पूरे संसार में फैला। इस तरह उन्माद त्रय "प्रलोभन" का आधार हुआ और सामरिक तंत्र और कार्यक्रम "भय" का आधार हुआ। विज्ञान युग के पहले भी मानव जाति "भय" और "प्रलोभन" से ग्रसित रहा ही है। भले ही वह पहले स्वर्ग के लिए "प्रलोभन" और "नर्क" के लिए "भय" और पाप– पुण्य शब्दों की छाया में पला हो। विज्ञान विधि से पूर्णतया सुविधा संग्रह के लिए प्रलोभन और युद्ध संग्राम ध्वंस–विध्वंस तथा दंड विधानों के प्रति भय प्रभावित हो गया। (**अध्याय : , पृष्ठ नंबर:** 223)

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण:2013)

- **N o t f o u n d**

स्वानुशासन

Version 0.1	Draft version created	Roshani Sahu, 28/04/2018
Version 0.2	Draft version created	Roshani Sahu, 29/10/2019

स्वानुशासन की परिभाषा

- स्वस्फूर्त व्यवस्था गति।
- प्रामाणिकता, समाधान, न्याय, नियम पूर्वक सम्पूर्ण आयाम, दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में स्वयं स्फूर्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन क्रिया।

(परिभाषा संहिता, संस्करण : 2012 मुद्रण: 14 जनवरी 2016, पृष्ठ नंबर: 215)

अनुक्रमणिका

"स्वानुशासन" को लेकर मध्यस्थ दर्शन वांग्मय में आये सन्दर्भों को निम्न क्रम से संकलित किया गया है.

1. मानव व्यवहार दर्शन ९५
2. मानव कर्म दर्शन ९७
3. मानव अभ्यास दर्शन ९७
4. मानव अनुभव दर्शन ९८
5. समाधानात्मक भौतिकवाद ९९
6. व्यवहारात्मक जनवाद १०३
7. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद १०४
8. व्यवहारवादी समाजशास्त्र १०५
9. आवर्तनशील अर्थशास्त्र १०७
10. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान १०८
11. मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या ११६
12. जीवन विद्या –एक परिचय ११८
13. विकल्प ११८
14. जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु ११८
15. मानवीय आचरण सूत्र ११९
16. संवाद – भाग १ १२०
17. संवाद – भाग २ १२१

सन्दर्भ : मानव व्यवहार दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण: 2015)

- भाई और बहन सम्बन्ध: –

भाई और बहन के सम्बन्ध को सौहार्द भाव के नाम से जाना जाता है. इसमें परस्पर जागृति की प्रत्याशा एवं उत्साह है. एक की जागृति, दूसरे पक्ष की जागृति को आप्लावित कर देता है. जैसे यदि कोई बहन किन्ही विशेष सदगुणों से संपन्न है तो इसके कारण बहन स्वयं में जितना आप्लावित है उतना ही अथवा उससे अधिक आप्लावन भाई में पाया जाता है. इसी प्रकार भाई का भाई के साथ और बहन का बहन के साथ पाया जाता है.

भाई–बहन की पहचान एक निश्चित आयु में हो पाती है. पहचान होते ही परस्परता में सच्चाई, समझदारी और परिवार सम्मत अथवा जागृत–मानव परिवार सम्मत अपेक्षा के अनुसार, कौमार्य अवस्था में आज्ञापालन सहयोग और अनुसरण जैसे कार्यों में परस्पर मूल्यांकन होना पाया जाता है. यही मित्रों के साथ भी होता है. जब भाई–बहन इन मुद्दों पर मूल्यांकन करने लगते हैं तब भी अभिभावक और गुरुजनों के साथ आज्ञापालन सम्बन्ध रहता ही है. अनुसरण भी इन्ही दो पक्षों से जुड़ा रहता है. मूल्यांकन में यह सब बात स्पष्ट होना स्वाभाविक रहता है. जहां तक सहयोग की अभिव्यक्ति है, इसमें एक दूसरे को अधिकाधिक सटीकता की और विचार अथवा प्रकाशित होने की सम्भावना बनी ही रहती है.

कौमार्य और युवावस्था के बीच भाई–बहन, भाई–भाई, बहन–बहन के परस्परता में अनुशासन की बात आती है. अनुशासन आज्ञा पालन के क्रम में एक पक्षीय हो पाते हैं. अनुशासन गुरुजनों व अभिभावकों से जीने में प्रमाणित रहने के आधार पर, अनुशासन बोध संतानों में होना स्वाभाविक है. इन्ही तथ्य के आधार पर, हर मानव संतान अनुशासन को अपने विचारों से जोड़ना शुरू करता है. उसी के साथ आवश्यक–अनावश्यक, उपयोगी–अनुपयोगी विधा में भी वैचारिक प्रयुक्तियाँ होना स्वाभाविक रहता है. इस प्रकार अनुशासन आवश्यकता, उपयोगिता के आधार पर स्वीकृत होना शुरू होता है. शनैः शनैः हर मानव संतान क्रम से अनुशासन में दक्ष होना पाया जाता है.

इन सभी विधाओं में मानव संतान गुजरता हुआ अर्थात आज्ञापालन, अनुशासन प्रक्रिया से सोच–विचार प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ अपने आप में निश्चय की प्रक्रियाएं आरम्भ होते ही यही निश्चयन सुस्थिर होना ही आज्ञापालन और अनुशासन के आशय रहता ही है.

जैसे ही युवावस्था में पहुँचते हैं, स्वाभाविक रूप में **स्वानुशासन** का प्रमाण आवश्यकता के रूप में होता ही है. यही अभ्युदय का प्रमाण होना पाया जाता है. **स्वानुशासन** सर्वतोमुखी समाधान के रूप में ही प्रमाणित होता है. यही मानव संचेतना की अपेक्षा और सार्थकता है. यह शिक्षा–संस्कार कार्यों से लोक–सुलभ होना पाया जाता है.

जागृत मानव परंपरा में ही मानवीय शिक्षा संस्कार सार्थक होना पाया जाता है. इस विधि से कार्य–व्यव्हार विचार संपन्न होते हुए भाई–बहन–मित्र संबंधों में विश्वास पूर्वक सम्मान व मूल्यांकन पूर्वक परस्परता में स्नेह मूल्य को सदा–सदा प्रमाणित करना होता है. इस विधि से इन संबंधों में विश्वास, सम्मान, स्नेह मूल्य प्रधान रहता है, साथ ही प्रेम मूल्य स्पष्ट होना भावी रहता है. **(अध्याय: 16– (i), पृष्ठ नंबर: 124–125)**

- राष्ट्रीय स्तर पर राज्य–नीति निम्न छः दृष्टिकोण से निर्धारित की जानी चाहिए तथा उसका लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए. इन बिंदुओं के आधार पर मानव के सह–अस्तित्व, जागृति तथा समृद्धि की दृष्टि से व्यवस्था तथा **स्वानुशासन** का सामान्यीकरण महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है.

    1. राष्ट्रीय सुरक्षा, सह–अस्तित्व सिद्धांत से.
    2. आर्थिक सुरक्षा, परिवार सहज आवश्यकता से अधिक उत्पादन सिद्धांत आवर्तनशील विधि से.
    3. उत्पादन सुरक्षा, प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के सिद्धांत से.
    4. विनिमय सुरक्षा, श्रम नियोजन व विनिमय सिद्धान्त से.
    5. विद्या–अध्ययन संस्कार सुरक्षा, सह–अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान विधि से.
    6. नैतिक सुरक्षा – तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा से. **(अध्याय: 16– (ii), पृष्ठ नंबर: 133–134)**

सन्दर्भ : मानव कर्म दर्शन

(संस्करण: 2010, मुद्रण:2017)

- Not found

सन्दर्भ :मानव अभ्यास दर्शन

(संस्करण: द्वितीय, मुद्रण: 2010)

- Not Found

सन्दर्भ :मानव अनुभव दर्शन

(संस्करण: 2011, मुद्रण:2016)

- जड़ प्रकृति के साथ नियम पूर्वक उत्पादन, समाज में न्याय पूर्वक व्यवहार, स्वयं में समाधान पूर्ण विचार एवं सत्ता में अनुभवपूर्ण क्षमता से संपन्न होना ही मानव इकाई सहज परम जागृति है। यही स्वतंत्रता का आद्यान्त लक्षण व **स्वानुशासन** का स्वरूप है। **(अध्याय: 2, पृष्ठ नंबर: 14)**

सन्दर्भ: समाधानात्मक भौतिकवाद

(संस्करण:2009)

- मानव का अस्तित्व में अनुभूत होने के प्रमाणों को प्रमाणित करना और **स्वानुशासन** रूप में जीने की कला को प्रमाणित करना परम जागृति हैं। इस प्रकार मानव परंपरा जागृति में, से, के लिए है– यह स्पष्ट है। (**अध्याय**: 6, **पृष्ठ नंबर**: 112)
- सही और गलत का संक्रमण बिन्दु अथवा सीमा रेखा जागृत मानव को समझ में आता है। जागृत मानव ही विकसित मानव है। जागृति के लिए प्रयत्नशील मानव ही विकासशील मानव हैं। जागृति के लिए प्रयत्नशील मानव को अल्प जागृत व अर्द्ध जागृत मानव जागृति क्रम कोटि में पहचाना जा सकता है। जागृति का प्रमाण हैं –अस्तित्व दर्शन अर्थात् सह–अस्तित्व के प्रति पूर्ण जागृति अर्थात्:–
    1. अस्तित्व कैसा है, इसका संपूर्ण उत्तर जिसके पास हो।
    2. जो जीवन ज्ञान अर्थात् चैतन्य स्वरूप के अध्ययन में पारंगत हो और जिसका मानवीय आचरण वर्तमान में प्रमाणित हो, यही जागृत व्यक्ति का स्वरूप है।

इसका मतलब यही हुआ कि जो जीवन को भले प्रकार से जानता मानता हो; अस्तित्व को भले प्रकार से जानता मानता हो और मानवीयतापूर्ण आचरण अर्थात् स्वधन, स्वनारी, स्वपुरुष और दयापूर्ण कार्य–व्यवहार करता हो; तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा करता हो, संबंधों को पहचानता हो, मूल्यों का निर्वाह करता हो– यही मूल्य, चरित्र, नैतिकतापूर्ण मानवीय आचरण है। इस प्रकार जागृत मानव का स्वरूप, कार्य और प्रमाण स्पष्ट हो जाता है। यह मानव कुल में अध्ययनगम्य होना और व्यवहारिक होना सहज है। जागृत मानव परंपरा का आधार भी इन्हीं तीन तथ्यों का मानव परंपरा में होने मात्र से है। जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान के रूप में मानवीयता प्रमाणित होती है। सह–अस्तित्व दर्शन ज्ञान से वर्तमान रूप में विद्वत्ता प्रमाणित होती है। जीवन ज्ञान ही जीवन विद्या है। अस्तित्व ही विद्वत्ता की संपूर्ण वस्तु है। मानवीयता ही संपूर्ण आचरण हैं। अखण्ड समाज ही विद्वत्तापूर्ण मानवत्व का वैभव है। सार्वभौम व्यवस्था ही अस्तित्व में जागृत मानव के अविभाज्य वर्तमान होने का प्रमाण है। मानव में **स्वानुशासन** ही जागृति पूर्णता का प्रमाण है। इस प्रकार अच्छाईयों में प्रमाणित, समर्थित मानव में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा सहज मानवीय स्वभावों से अनुप्राणित, अभिप्रेरित और जीता–जागता स्थिति मिलता है। सही, न्याय, समाधान, अभ्युदय सम्पन्न श्रेष्ठतम मानव परिवार, मानव समाज, मानव व्यवस्था का सहज वैभव है। यही विकसित परिवार अर्थात् जागृत परिवार, जागृत समाज अथवा जागृत मानव अखण्ड समाज के अर्थ में सार्थक हो पाता है।

यह समाधानात्मक भौतिकवाद की सार्थकता और उद्देश्य है। (**अध्याय**: 6, **पृष्ठ नंबर**: 130–131)

- जीवन सहज कार्यकलापों में, से बोध और अनुभव हैं। तृप्ति क्रम में सह–अस्तित्व सहज पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था ये सभी अवस्थाएँ सत्ता में संपृक्त जड़–चैतन्य–प्रकृति के रूप में नित्य विद्यमान, नित्य वर्तमान है। इस सहज सत्य को जानना, मानना और तृप्ति बिंदु का अनुभव करना, उसकी निरंतरता बनी ही रहना, उसकी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा को अध्ययन विधि से सार्थक बना देना, साथ ही **स्वानुशासन** विधि से जीने की कला को प्रमाणित करना ही दर्शन शास्त्र का सार्थक रूप हैं। **(अध्याय: 6, पृष्ठ नंबर: 136)**
- ''समाधानात्मक भौतिकवाद" के विचारों का आधार सह–अस्तित्व ही है– यह स्पष्ट किया जा चुका हैं। सह–अस्तित्व मूलत: अस्तित्व ही हैं, सह–अस्तित्व ही अपने सूत्र में वर्तमान एवं नित्य प्रभावी है और शाश्वत् व्यवस्था के रूप में सह–अस्तित्व हैं। अस्तित्व नित्य वर्तमान हैं। यही सह–अस्तित्व का नित्य वैभव हैं– यह स्पष्ट होता हैं। सह–अस्तित्व का स्वरूप हैं– सत्ता में संपृक्त जड़–चैतन्य–प्रकृति, जो स्वयं पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था के रूप में इसी धरती में स्थित मानव को मानव में, से, के लिए दिखाई पड़ती हैं। इसमें से किसी अवस्था को घटाकर या बढ़ाकर सह–अस्तित्व सहज संपूर्णता पूर्णता और उसकी निरंतरता की कल्पना भी संभव नहीं हैं। दर्शन और ज्ञान ही दृष्टापद का प्रमाण हैं तथा त्व सहित व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, दृष्टापद सहित वैभव यह संभावना मानव में समीचीन है। इससे अधिक ज्ञान, दर्शन और आचरण की आवश्यकता निर्मित नहीं हो पाती, इस मुद्दे पर बुद्धिवाद के अनुसार इसे कैसे समझा जाय कि और अवस्थाएँ निर्मित होने की आशा करना क्यों बुरा हैं, इस प्रकार से कुछ अस्पष्ट प्रश्न किये जा सकते हैं। अस्पष्ट प्रश्न इसीलिए हो जाते हैं कि मानव की आशा, आकांक्षा और अभिलाषाओं की अंतिम मंजिल ही है सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता। यही जीवन जागृति का प्रमाण हैं। जीवन की अंतिम अभिलाषा जागृति हैं। मानव की अंतिम अभिलाषा सर्वतोमुखी समाधान और प्रामाणिकता हैं। समाधान से जागृति, जागृति से समाधान प्रमाणित होना ही मानव परंपरा की सफलता हैं। यही सफलता मानव व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रकाशन सूत्र है। इस सत्यता को अथवा साक्ष्य को स्पष्ट कर देता हैं प्रामाणिकता, **स्वानुशासन** सहज अभिव्यक्ति शीर्ष कोटि की जागृति है। यह भ्रम मुक्ति का प्रमाण है। यह निर्भमता का सहज प्रमाण है। इससे अधिक मानव में कल्पनाशीलता की, विचारशीलता की, इच्छाशीलता की गति और अपेक्षा बनती ही नहीं हैं। इसलिए, इसे अंतिम सार्थक परंपरा में निरंतर वैभव होने योग्य वस्तु के रूप में स्वीकारना एक आवश्यकता और अनिवार्यता है, क्योंकि मानव शुभ को स्वीकारता ही हैं, इसीलिए इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य भी हैं। **(अध्याय:7 , पृष्ठ नंबर: 157–158)**
- व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अतंर्राष्ट्र जैसे परिप्रेक्ष्यों में सामरस्यता आवश्यक हुई। मानव में पाई जाने वाली प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य रूपी दृष्टिकोणों में सामरस्यता आवश्यक हुई। परिवार, समाज, राज्य, व्यवस्था प्रमाणिकता सहज निश्चित दिशा में सामरस्यता के प्रति परिशीलन करना, पुनर्विचार करना, संतुलित ध्रुवीकृत विधि से निष्कर्षों को पाना आवश्यक हुआ। इसी आधार पर कल्पना, तर्क, विज्ञान हुआ।

1. प्रत्येक परिवार में उत्पादन–कार्य संपन्न होता हुआ देखने को मिलता हैं अथवा इसकी आवश्यकता इस धरती पर सभी स्थितियों में प्रमाणित है।

2. मानव में, से, के लिए जागृति अथवा जागृति पूर्णता ही लक्ष्य है। इसलिए जागृति की ओर दिशा निर्देशित होना सामाजिकता हैं। यह जागृति सहज लक्ष्य सर्वमानव में पाई जाने वाली संचेतना, संचेतना सहज अपेक्षा रूपी तृप्ति और उसकी निरंतरता के अर्थ में पहचाना गया है। मानव संचेतना जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में क्रियारत होना पाया जाता हैं। जानने, मानने का तृप्ति बिंदु अस्तित्व में अनुभूति और उसके प्रमाण रूप में **स्वानुशासन** सहज रूप में अक्षुण्ण होता हैं। जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण सहित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी सबको सुलभ हो पाती हैं। यही कल्पनाशीलता का तृप्ति है।

इस प्रकार परिवार मूलक, स्वराज्य गति सहित **स्वानुशासन** संपन्न होना ही मानव पंरपरा का सहज लक्ष्य है। इसी क्रम में मानव का मानवीयतापूर्ण विधि से स्वयं में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी संपन्न होना सहज हैं। ऐसी सहजता किसी भी समुदाय परंपरा में, से सुलभ नहीं हो पाई। तथापि हर देश, हर समुदाय में श्रेष्ठतम व्यक्तियों का होना, इतिहास सहज आंकलन के रूप में भी देखा जा रहा हैं। आज भी आदर्श व्यक्ति अथवा व्यक्तित्वों को हर समुदाय, हर देश, हर परंपरा में जन सामान्य स्वीकारता हुआ देखने को मिल रहा हैं। जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन सहज अध्ययन से मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित हो जाता हैं। मानवीयता पूर्ण आचरण सहज व्यक्ति तथा परिवारों को अब पहचानना संभव हैं। आदर्शवादी–भौतिकवादी कोई समुदाय, कोई शासन, कोई समाज सेवी संस्था ऐसे व्यक्ति, परिवार को पहचानने का प्रयास नहीं कर पाए।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सहज संभावना के लिए, यही सर्वेक्षण आधार हैं। मानव में, मानवीयतापूर्ण आचरण सहज पहचान इस प्रकार से देखा गया हैं – जो स्वधन, स्वनारी/ स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य–व्यवहार करता हैं। संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन कार्य करता हैं, उभय तृप्ति सहज प्रमाण होता हैं। तन, मन, धन रूपी अर्थ को सदुपयोग, सुरक्षा करता हैं। यही मानवीयता पूर्ण आचरण का स्वरूप हैं। **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर: 309–311)**

- (3) दया:–अपने स्वरूप में जीवन जागृति सहज प्रामाणिकता क्रम में होने वाली एक अभिव्यक्ति हैं। दया सहज मानवीयता की अभिव्यक्ति का आंकलन व प्रमाण मानव में ही हो पाता हैं। क्षमता, योग्यता, पात्रता के अनुरूप वस्तु सुलभता की मूल्यांकन क्रिया है। पात्रता और व्यक्तित्व संतुलन में ही मानवीयता पूर्ण आचरण को मानव प्रमाणित कर पाता हैं। इसी सत्यतावश हर मानव का ऐसा मूल्यांकन व आचरण क्रम में प्रमाणित होना एक आवश्यकता हैं। इसी आधार पर पात्रता के अनुरूप वस्तु सहज उपलब्धि कार्य में अपने तन, मन, धन को अर्पित करता हैं। यही दया का तात्पर्य है। हर मानव में मानवीयता सहज पात्रता रहता ही है। मानवत्व रूपी वस्तु का निर्धारण व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में और प्रामाणिकता और **स्वानुशासन** को व्यक्त करने के अर्थ में ध्रुवीकृत होता

हैं। इन ध्रुवों के मध्य में जो–जो वस्तुएँ मानव के पास होना चाहिए वह सब पात्रता के अनुरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व प्राप्ति सहज वस्तुएँ है। संपूर्ण वस्तु जो मानवीय व्यवस्था में प्रमाणित होता है वह समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व है। शरीर यात्रा काल से इन चारों वस्तुओं को अथवा चारों वस्तुओं के लिए संप्राप्ति योग्य पात्रता मानव में जीवन सहज रूप में रहती ही है। इस प्रकार शरीर यात्रा काल में ही, प्रत्येक मानव संतान दया का पात्र रहता ही हैं। परंपरा में उन वस्तुओं को दया पूर्वक पीढ़ी से पीढ़ी को समर्पित किया जाता हैं। परंपरा में जो वस्तुएँ स्थापित करना हैं वह उसमें होने मात्र से ही आगे पीढ़ी में स्वाभाविक रूप में पात्रता के अनुरूप वस्तु सुलभ होती है।... **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर: 312–313)**

- मानव सहज शरीर यात्रा, जीवन और शरीर के संयुक्त यात्रा के प्रयोजनों को देखने पर पता लगता हैं कि जागृति अर्थात् जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना, उसकी तृप्ति और निरंतरता का होना ही हैं। यही प्रामाणिकता, **स्वानुशासन**, सर्वतोमुखी समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होना ही हैं। यही व्यवसाय, व्यवहार, समाज व्यवस्था, विचार और अनुभव सहज रूप में वांछित, आवश्यकीय चिरप्रतीक्षित घटना है अथवा उपलब्धि है। उल्लेखनीय बात यही है कि अब संपूर्ण सौभाग्य, मानव के लिए करतलगत होना संभव हो गया हैं। इस क्रम में प्रत्येक मानव, प्रत्येक परिवार, सम्पूर्ण मानव के तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा सहज रूप में होगी। फलस्वरूप पर्यावरणीय नैसर्गिक समस्या, प्रदूषण समस्या, न्याय समस्या, सुरक्षा समस्या, उत्पादन समस्या, विनिमय समस्या, शिक्षा–संस्कार समस्या और स्वास्थ्य–संयम समस्याएँ दूर होंगी। **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर: 317–318)**
- सह–अस्तित्व सहज रूप में ही आवर्तनशीलता प्रभावशील होने के कारण मानव जागृतिपूर्वक आवर्तनशील विधि से जीने की कला को विकसित करता हैं। इसका कारण तत्व यही है कि मानव परंपरा सहज रूप में अस्तित्व में विश्वास करता है, इसका तात्पर्य जागृति है। अस्तित्व में जागृति, सह–अस्तित्व में जागृति, विकास प्रणाली में जागृति, जीवन में जागृति, भौतिक–रासायनिक रचना–विरचना में जागृति, पूरकता में जागृति, उदात्तीकरण में जागृति, ''त्व” सहित व्यवस्था में जागृति, मानवत्व सहित मानव अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने में जागृति; प्रामाणिकता, **स्वानुशासन**, सर्वतोमुखी समाधान, समाज न्याय में जागृति, समृद्धि और अभयता में जागृति, क्रियापूर्णता, आचरण पूर्णता और उनकी निरंतरता में जागृति सर्वसुलभ रहने के आधार पर ही मानव परंपरा जागृत रहने का प्रमाण अक्षुण्ण रहता है। ये सभी मुद्दे, ये सभी बिंदुएँ अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्णत: उसी निरंतरता में समाए रहते हैं। फलस्वरूप मानवीयतापूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि व व्यवस्था सर्वसुलभ हो जाती है। यही मानव कुल की महिमा है। इस विधि से युद्ध, शोषण, द्रोह–विद्रोह विहीन सह–अस्तित्व सहज समाज रचना और सार्वभौम व्यवस्था मानव कुल के लिए सहज सुलभ होगी। **(अध्याय: 9 (10), पृष्ठ नंबर: 322–323)**

सन्दर्भ : व्यवहारात्मक जनवाद

(संस्करण: 2009, मुद्रण: 2017)

- N o t f o u n d

सन्दर्भ : अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

(संस्करण:2009)

- हर मानव परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में कार्यरत, व्यवहाररत, परिवार और समग्र व्यवस्था में भागीदारीरत होने योग्य है और जागृति पूर्ण विधि से प्रमाणित होने योग्य है । इसके लिये अनुभव मूलक परंपरा विधि आवश्यक एवं समीचीन है । आवश्यकतानुसार अनुसंधान न करते हुए और इसके विपरीत दासता अर्थात् ईश्वर के प्रति दासता और सामुदायिक–धर्म और सामुदायिक राज्य के प्रति दासता को स्वीकार करने के लिये परंपरागत विधि से कार्यक्रमों को प्रस्तुत करना अथ से इति तक भ्रम है । जागृति सहज प्रमाण यही है हर व्यक्ति में पाये जाने वाले कल्पनाशीलता के तृप्ति बिन्दु रूपी परिवार मूलक व्यवस्था में पारंगत बनना और बनाने के लिए सहमत होना और कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु रूपी **स्वानुशासन** सहज स्वतंत्रता प्रमाणों के रूप में प्रमाणित होता है । इसे करना, कराना ही एकमात्र उपाय है । यह इस दशक से समीचीन हो गया है । (**अध्याय: 4, पृष्ठ नंबर**:110–111)
- जागृति के अनन्तर मानव परंपरा में, से, के लिए प्रयोजन सर्वशुभ चाहने वाले मानव सहज और जागृत जीवन सहज विधि से प्रमाण रूप में सार्थक होना देखा गया । मानव सहज विधि से समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व, स्वायत्त मानव, परिवार मानव, व्यवस्था मानव और समाज मानव प्रमाणित करता है । इसमें सर्व मानव का स्वत्व, स्वतंत्रता, अधिकार होना देखा गया है इसीलिये इसका लोक व्यापीकरण समीचीन हो गया है । जीवन सहज प्रयोजन, जागृति और जागृतिपूर्णता ही है । जागृतिपूर्णता, उसकी निरन्तरता क्रम में सुख, शांति, संतोष, आनन्द अक्षुण्ण होना पाया जाता है । यह जागृतिपूर्ण मानव (दिव्यमानव) में, से, के लिए प्रमाण और प्रामाणिकता पूर्वक वैभवित होना स्वाभाविक है । यही **स्वानुशासन** और परम स्वतंत्रता है । यही गति का गंतव्य स्वरूप है । यह प्रमाणित होना नियति सहज विधि है । ऐसे प्रमाण मानव परंपरा में सार्थक होना देखा गया है इसलिये और प्रकार की शरीर रचना को प्रतीक्षीत करने की कोई आवश्यकता नहीं है । मानव परंपरा में इस दशक में जितने भी नस्ल है उन सभी नस्लों में रचना का प्रधान भाग मेधस होना और वह पूर्णतया समृद्ध होना देखा गया है । अब केवल जागृतिपूर्ण परंपरा की ही आवश्यकता है। यह अनुभवमूलक प्रमाणों को लोकव्यापीकरण विधि से सार्थक होना स्वाभाविक है । यही भ्रम और बंधन मुक्ति का प्रयोजन मानव परंपरा में सुलभ होती है । (**अध्याय: 5, पृष्ठ नंबर**: 138–139)

सन्दर्भ : व्यवहारवादी समाजशास्त्र

(**संस्करण** : 2009)

- संविधान का लक्ष्य – 1. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था (मानव धर्म) **स्वानुशासन** रूपी स्वतंत्रता है। 2. मानव धर्म समाधान सहज तृप्ति (सुख, शांति, संतोष, आनन्द और समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व) और उसकी निरंतरता ही ''स्वत्व'' है। (**अध्याय** : **4**, **पृष्ठ नंबर**: 123)
- संतुलन ही हर व्यक्ति में दायित्व और कर्तव्य के रूप में नियंत्रित रहना पाया जाता है। यही संपूर्ण कार्यों में नियमित रहना होता है। इस प्रकार मानव अपने परिभाषा के अनुरूप अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान को स्वीकृति के रूप में **स्वानुशासन** के रूप में स्वतंत्रता को; समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में स्वराज्य व्यवस्था को प्रमाणित करता है। यही मानव सहज परिभाषा का सार्थकता, उपकार, तृप्ति और उसकी निरंतरता है। अस्तु, मानव अपने परिभाषा सहज सार्थकता को प्रमाणित करना ही मौलिक अधिकार है। (**अध्याय** : **6**, **पृष्ठ नंबर**: 146)
- ''जागृति मानव का वर है।'' मानव सहज कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु **स्वानुशासन** है। यह परम जागृति के रूप में प्रमाणित होता है। यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है। (**अध्याय** : **6**, **पृष्ठ नंबर**: 249)
- **मानव समाज में उत्सव**

मानव समाज का स्वरूप अपने अखण्डता में प्रमाणित होना स्पष्ट किया जा चुका है क्योंकि समुदाय समाज होता नहीं, समाज समुदाय होता नहीं। समाज और उसका वैभव अनुभवमूलक प्रणाली से किया गया अभिव्यक्ति विन्यास, विचार विन्यास, व्यवहार विन्यास और कार्य विन्यास ही है। विन्यास का तात्पर्य विवेक सहित न्यायपूर्वक किया गया संप्रेषणा है। इस विधि से समाज अपने अखण्डता के स्वरूप में ख्यात होना स्वाभाविक है। अखण्ड समाज अपने परिभाषा में पूर्णता के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी कार्यकलापों का निरन्तर गति अथवा अक्षुण्ण गति से है। इस प्रकार परिभाषा के रूप में भी पूर्णता अपने–आप में इंगित होना पाया जाता है। पूर्णता का स्वरूप परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और **स्वानुशासन** के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है। परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था क्रम में व्यवस्था स्वयं क्रिया पूर्णता और उसकी निरन्तरता का द्योतक और प्रमाण है। **स्वानुशासन** जागृति पूर्णता का प्रमाण है। यही आचरण पूर्णता का स्वरूप है। पूर्णता के अनन्तर उसकी निरन्तरता का होना देखा गया है। क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता और उसकी निरंतरता सदा–सदा के लिये गतिशील रहना ही समाज गति का तात्पर्य है। ऐसी स्थिति मानव परंपरा में अस्तित्व सहज अनुभूति, अस्तित्व ही सह–अस्तित्व सहज होने के आधार पर विचार शैली, अस्तित्व में ही विकास और जागृति प्रमाणित होने के क्रम में मानव ही जागृति को प्रमाणित करना सम्पूर्ण अखण्डता का सूत्र है। ऐसे जागृति पूर्णता को परम्परा के रूप में प्रमाणित करने की विधि से व्यवस्था एक सहज क्रियाकलाप है। व्यवस्था सर्वमानव में स्वीकृत तथ्य है। फलस्वरूप सार्वभौम

व्यवस्था, अखण्ड समाज के आधार पर क्रियान्वित होना स्वाभाविक है। इस प्रकार मानव में क्रिया पूर्णता आचरण पूर्णता ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होता है। यह सर्वमानव में स्वीकृत अथवा स्वीकृत होने योग्य तथ्य है। इसका कारण जीवन महिमा ही है। जीवन सदा–सदा जागृति और जागृति पूर्णता के लिये उन्मुख रहता ही है। इसीलिये शैशव अवस्था से ही जागृति स्वीकृत होना रहता है और अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था भी स्वीकृत रहता है। इसकी आपूर्ति करना ही जागृत मानव परम्परा का प्रमाण है या तात्पर्य है। **(अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 272–273)**

- शिक्षा–संस्कार का आधार रूप अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन, मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववादी विधि) से सम्पन्न होना देखा गया है। यही परम जागृति का द्योतक है। यही जागृत मानव परंपरा की आवश्यकता है। मध्यस्थ दर्शन का तात्पर्य मध्यस्थ जीवन, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति, मध्यस्थ सत्ता सहज विधि से अध्ययन कार्य को सह–अस्तित्व सूत्र में पूर्णतया सजा लिया गया। यही शिक्षा का महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मध्यस्थ जीवन का स्वरूप नियम, न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण विधियों से जीने की कला ही है। यही परिवार मूलक स्वराज्य के रूप में स्वतंत्रता और **स्वानुशासन** के रूप में प्रमाणित होना देखा गया है। यही मध्यस्थ जीवन का वैभव है। ऐसा स्वराज्य और स्वतंत्रता हर मानव में, से, के लिये एक चाहत होता ही है। जैसे :– हर मानव संतान को जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य–व्यवहार का इच्छुक, सत्य वक्ता होने के रूप में देखा गया है। इन्हीं आशयों की पूर्ति के लिये नियम, न्याय, सर्वतोमुखी समाधान, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान सहज तथ्यों को अवधारणा में स्थापित कर लेना ही मानवीयतापूर्ण शिक्षा का स्वरूप और कार्य है। इस कार्य विधि के अनुसार मानव परंपरा अपने जागृति को प्रमाणित करता है। यही जागृत मानव परंपरा का तात्पर्य है। **(अध्याय:9, पृष्ठ नंबर: 279)**
- धर्म और दीक्षा संस्कार को जागृति पूर्णता, **स्वानुशासन**, प्रामाणिकता के रूप में प्रतिपादित करना हर स्नातक व्यक्ति का अपने ही उद्देश्य और मूल्यांकन के विधि से एक आवश्यकता बना ही रहता है। जिसके आधार पर प्रौढ़ और बुजुर्ग लोग समय–समय पर आवश्यकतानुसार मूल्यांकन कर सके और तृप्ति पा सके। उत्सव कार्य में एक आवश्यकता यह बना ही रहता है। **(अध्याय : 9, पृष्ठ नंबर: 283)**

सन्दर्भ : आवर्तनशील अर्थशास्त्र

(संस्करण: 2009)

- Not Found

सन्दर्भ : मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

(**संस्करण**: 2008)

- अस्तित्व में "परमाणु में विकास'' पूरकता, संक्रमण, जीवन, जीवनी क्रम, सकारात्मक समझ, पद्धति, प्रणाली, दिशा की ओर जीने का कार्यक्रम रूपी परिवार मूलक स्वराज्य और **स्वानुशासन** रूपी स्वतंत्रता को विधिवत अध्ययन किया गया है। साथ ही साथ अस्तित्व में विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, भौतिक रासायनिक रचनाओं और विरचनाओं का भी अध्ययन किया गया। इस प्रकार जीवन, जीवन जागृति क्रिया और भौतिक रासायनिक क्रियाओं को सांगोपांग अध्ययन करने के उपरान्त पता चला कि संक्रमण, जीवन, जीवन जागृतिक्रम, जागृतिपूर्णता तथा उसकी निरंतरता पूर्वक मानव परम्परा नित्य वैभवशील होना समझा गया अभी तक जागृति क्रम में स्थित जीवन और रासायनिक भौतिक रचना सहज शरीर के संयुक्त रूप में प्रत्येक मनुष्य है। इन तथ्यों के आधार पर मानव के "ज्ञानावस्था की इकाई'' का पहचान सहित नाम दिया गया है। (**अध्याय :2 , पृष्ठ नंबर: 11**)
- सम्बंधों की पहचान, निर्वाह की आवश्यकता को सहज रूप में ही पहचाना जाता है। पिता–पुत्र सम्बन्ध में मूल्यों को प्रमाणित करना, परम्परा में इसकी शिक्षा, संस्कार और व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही, सफल होना पाया जाता है। इस बीसवीं शताब्दी की दसवीं दशक तक व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा में अभी तक की शिक्षा, संस्कार विधियों से, समुदायवादी अथवा व्यक्तिवादी प्रयासों की अपेक्षा में होते हुए भी, स्वतंत्रता और स्वराज्य रूपी ध्रुवों के आधार पर सफल होने का आधार, किसी परम्परा में करतलगत नहीं हुआ अर्थात व्यवहार में प्रमाणित, शिक्षा में प्रबोधित नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप पुन: व्यक्तिवादी मानसिकता और समुदायवादी मानसिकता के लिए मानव विवश होते आया। इस प्रकार व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा का स्वरूप स्पष्ट हो गया। सर्वमानव जागृति सहज विधि से इसे स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, **स्वानुशासन** रूप चरित्र मूल्य, नैतिकता की मानसिकता का लोकव्यापीकरण सहित, प्रमाणित करने की आवश्यकता निर्मित हुई है। इसी क्रम में, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर, यह "मानव–संचेतनावादी मनोविज्ञान'' प्रणयित हुआ है। इसमें सम्बंधों को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना प्रधान तत्व है। यही मानव संचेतना का निश्चित स्वरूप है। जागृत मानव का सम्पूर्ण क्रम उक्त चार स्वरूप में व्याख्यायित है। ऐसी चार क्रियाएं प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए प्रमाणित होने का अध्ययन है। जैसे – माता की कोख में आई संतान, सर्वप्रथम मां को ही पहचानती है क्योंकि उनसे पोषण कार्य सम्पन्न होता हुआ, शैशव काल में ही, जीवन पहचान लेता है। फलस्वरूप मां को पहचानना संभव हो जाता है। उसी के साथ साथ संरक्षण कार्य, सूत्रित होना आरंभ होता है। शिशु के प्रति अपेक्षा माता पिता में यही बनी रहती है कि शिशु स्वस्थ रहे, खुश रहे, उत्सवित रहे। इसी प्रत्याशा को सफल बनाने के लिए, विविध प्रकार के उपायों को अनुसंधान करते और प्रयोग करते माता पिता को देखा गया है। जैसे ही शिशु काल से कौमार्य अवस्था समीचीन होती है वैसे ही जागृत मानव, जागृति व सम्बंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने के अर्थ में

अभिभावक प्रेरक होना पाया जाता है। साथ ही आहार प्रणालियाँ ऐसी शिशु और कौमार्य अवस्था से ही स्वीकार होने लगती है। **(अध्याय : 3, पृष्ठ नंबर: 30–31)**

- मानव में संचेतना ही विशिष्ट वस्तु है, जिसका प्रभावन कार्य ही जागृति के रूप में प्रमाणित होता है। जागृति पूर्वक ही मूल्यांकन कार्य सम्पन्न होता है। श्रेष्ठता के मूल्यांकन का एक ध्रुव, मानव संचेतना है, उसकी जागृति (यथा जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने) में संगीत है, जिसका प्रमाण जानने में, निर्वाह करने में, सामंजस्यता है (अथवा एक रूपता है)। दूसरा ध्रुव अस्तित्व सहज, सह–अस्तित्व में, प्रयोजनों के साथ प्रमाणित होना ही है। यही जागृति प्रभाव और प्रभाव क्षेत्र के रूप में भी मानव परम्परा में स्पष्ट हो पाता है। मानव परम्परा में सम्पूर्ण प्रयोजन "व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी'' के रूप में "परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था'' ही है, जिसका लक्षण समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह–अस्तित्व ही है। यही सर्व मानव स्वीकृति है। इसी लक्षण या फलन के अर्थ में, व्यवस्था की सहज प्रतिष्ठा है। इन्हीं में श्रेष्ठता की पहचान हो पाती है। फलस्वरूप सम्मान कार्य सम्पन्न होता है। दूसरा प्रयोजन **स्वानुशासन** है, यही स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता में भी, श्रेष्ठता का प्रयोजन, लोकव्यापीकरण, प्रयोजन के आधार पर मूल्यांकित होता है। इस प्रकार सम्मान कार्यकलाप, सार्वभौमता के अर्थ में, चरितार्थ होना पाया जाता है। **(अध्याय : 5.1 , पृष्ठ नंबर: 52–53)**
- सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्त विधि "जानने–मानने में तृप्ति'' के अर्थ में, पहचानने–निर्वाह करने में – समाधान, समृद्धि, अभय, सह–अस्तित्व रूपी प्रमाणों के अर्थ में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। ऐसे स्वयं स्फूर्त प्रभाव, सह–अस्तित्व सहज रूप में, निश्चित, योग संयोग के लिए सूत्र निर्मित करते हैं। वातावरण में मानव तथा मानव निर्मित परिस्थितियां, बनी ही रहती हैं। नैसर्गिकता, सहज ही समीचीन रहती है। फलस्वरूप स्वयं स्फूर्त पहचान मनुष्य के साथ होना स्वाभाविक हुआ। इसी प्रकार नैसर्गिकता के साथ भी, संतुलन के अर्थ में स्वयं स्फूर्त पहचान हो पाती है। नैसर्गिकता में मनुष्य के अलावा, तीनों अवस्थाएं गण्य हैं। मानव परम्परा ही वातावरण के रूप में मनुष्य को उपलब्ध रहता ही है। सकारात्मक विधि से स्नेह की निरंतरता एवं वैभव प्रमाणित होता है। इस प्रकार स्नेह सम्बंध भी स्वयं स्फूर्त सम्बन्ध हैं। इसमें निहित आशय और प्रक्रिया भी स्पष्ट हो चुकी है। इसमें निरंतरता को बनाए रखना ही निष्ठा है। निष्ठापूर्वक ही सम्पूर्ण सम्बन्ध सफल हो पाते हैं। स्वयं स्फूर्त विधि ही, संतुष्टि का आधार बिंदु है। इसीलिए उभय संतुष्टि है क्योंकि हर सम्बन्ध में एक से अधिक व्यक्तियों का होना पाया जाता है। इसलिए उभय संतुष्टि (अथवा जो जो संबंधित रहते हैं, संतुष्टि क्रम में) स्नेह सम्बंध का निरंतर वैभवित होना पाया जाता है। सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्तियां, प्रत्येक व्यक्ति में, व्यवस्था और उसकी सार्वभौमता के अर्थ में ही प्रवर्तित है, जिसका व्यावहारिक फलन स्पष्ट रहता है। मानव–परम्परा में, से, के लिए सार्वभौम फलन–समाधान, समृद्धि, अभय और सह–अस्तित्व ही है। जीवन सहज अभीष्ट सुख, शांति, संतोष और आनंद ही है। इन दोनों ध्रुवों के प्रमाणीकरण प्रणाली के रूप में ही, मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था **स्वानुशासन** स्पष्ट हो जाता है। **(अध्याय : 5.1, पृष्ठ नंबर: 54–55)**

- मूल्यों का प्रमाण, जानने का प्रमाण, मानने का प्रमाण, पहचानने का प्रमाण, निर्वाह करने का प्रमाण, नियम का प्रमाण, न्याय का प्रमाण, सत्य सहज प्रमाण, अस्तित्व सहज प्रमाण, सह–अस्तित्व सहज प्रमाण, जीवन कार्य सहज प्रमाण, व्यवस्था सहज कार्यों का प्रमाण, विकास सहज प्रमाण, संक्रमण सहज प्रमाण, रचना सहज प्रमाण, विरचना सहज प्रमाणों को, मानव ही प्रस्तुत करता है। इसमें से आंशिक प्रक्रियाओं को किसी भी यंत्र अथवा जीवों को सिखाकर, मानव ने स्वयं को धन्य मान लिया। उल्लेखनीय बात यही है कि स्वयं को प्रमाण का आधार होने का गौरव स्वीकारना, इसको प्रमाणित करना प्रतीक्षित रहा है। इसके लिए जीवन–विधा शिक्षा का मानवीकरण सम्पन्नता के अनंतर, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, व्यवहारवादी समाजशास्त्र (मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान) और आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को, हृदयंगम करने के क्रम में, मानव में स्वयं के प्रति विश्वास करना, फलतः श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करना संभव हो जाता है। इस विधि से मानव, अपने में संतुष्टि संपन्न होता है। सर्वतोमुखी समाधान, **स्वानुशासन,** समाज न्याय, व्यवसाय में स्वावलम्बन प्रमाणित होता है। यही स्वयं में संतुष्ट होने का प्रमाण है। व्यवहार प्रमाण में ही, लक्षण और वस्तुएं (अथवा लक्षणों सहित वस्तुएं) प्रमाणित होती हैं। इस प्रकार अस्तित्व में सम्पूर्ण स्थिति, गति, कार्य और प्रयोजन को मानव परम्परा में प्रमाणित होना आवश्यक है। नियति सहज रूप में नित्य सहज और समीचीन है। (**अध्याय : 5.1, पृष्ठ नंबर: 74–75**)
- अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक–भौतिक रचना–विरचना, सम्पूर्ण मानव के लिए समझने–समझाने की वस्तु है। सीखने की जो कुछ भी प्रमाणित वस्तु है, यह मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण, कर्म अर्थात व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवस्था में भागीदारी, मानवीयता पूर्ण आचरण का अभ्यास, प्रामाणिकता सहज अभिव्यक्ति है। साथ ही सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में निष्ठा है। ये सम्पूर्ण जिज्ञासाएं व्यावहारिक रूप में चरितार्थ होती हैं। प्रौढ़ता की पराकाष्ठा में, से, के लिए **स्वानुशासन** की जिज्ञासा का होना पाया जाता है। जिज्ञासा मानव सहज प्रकाशन है। (**अध्याय : 5.1, पृष्ठ नंबर: 79**)
- पति–पत्नी का मानस, परिवार के आकार में, सुदृढ़ होना ही एक मन, दो शरीर का तात्पर्य है। साथ ही जीवन जागृति का संकल्प होना, एक मन दो शरीर का तात्पर्य है। जीवन जागृति प्रत्येक मनुष्य की अभीप्सा है। जीवन जागृति, जीवन–विद्या (ज्ञान) बोध होने के उपरान्त है। यह जीवन क्रिया कलापों के अंतर्सम्बन्ध को, परस्पर जीवन प्रभाव क्षेत्र अनुबन्ध क्रम से स्पष्ट करता है। निरीक्षण, परीक्षण विधिपूर्वक अभ्यास से, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सहज ही प्रमाणित होता है। द्रष्टा पद प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही यतीत्व व सतीत्व का तात्पर्य है। एक पत्नी व्रत, एक पतिव्रत भी, यतीत्व और सतीत्व का प्रमाण है। इस प्रकार **स्वानुशासन** के रूप में द्रष्टा पद का, जीवन–जागृति का प्रमाण, मानव सहज है। (**अध्याय : 5.1, पृष्ठ नंबर: 102**)

- संस्कार, नाम–जाति, धर्म, दीक्षा, शिक्षा सहज रूप में आवश्यक है। नाम संस्कार संबोधन के अर्थ में, जाति संस्कार – मानव जाति के अर्थ में, धर्म संस्कार मानव–धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के अर्थ में, दीक्षा–संस्कार जीवन जागृति, **स्वानुशासन** के अर्थ में सार्थक है। शिक्षा संस्कार पहले कहे चारों संस्कारों को सार्थकता प्रदान करते हुए –

    1) अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित
    2) स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान
    3) प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन का उदय।
    4) व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक) तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी प्रमाणित होने के रूप में, मानवीय संस्कार सार्थक होता है।

  फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहजता से संपन्न होता है। साथ ही मानवीय संस्कृति और सभ्यता स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है। इसका आधार है अखंड समाज में भागीदारी, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी। इस प्रकार मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक, पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित होना, सहज है। **(अध्याय : 5.1, पृष्ठ नंबर: 106–107)**

- संक्रमण एक ऐसा बिन्दु है जिसे समय का कालखंड, उस अवधि को गिन नहीं पाता है। किंतु अति सूक्ष्मतम कालखंड में ही संक्रमण क्रिया, संक्रमित हो पाती है। ऐसा मानव कल्पना में आता है। गठनपूर्णता रूपी घटनावश, चैतन्य पद में संक्रमित परमाणु, जीवन पद – प्रतिष्ठा को प्राप्त किया रहता है। ऐसे जीवन और शरीर के योगफल में मनुष्य परम्परा के रूप में वर्तमान है।

  मनुष्य में ही, जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य शरीर भी सुलभ हुआ है। मानव, प्रकृति सहज रूप में, जागृति पूर्वक सुखी (समाज न्याय सम्पन्न), समाधानित (सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न), समृद्धि सम्पन्न, प्रामाणिकता पूर्ण (**स्वानुशासन** सम्पन्न) विधि से मानव परम्परा का वैभवित होना ही जागृति पूर्वक कीर्ति सम्पन्न होना है। मानवीयता पूर्ण जीने की कला के लिए आवश्यकीय मानसिकता से सम्पन्न होना ही वस्तु का तात्पर्य है।

  (अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 118)

- मानवीयता अपने कार्य–व्यवहार रूप में, वृत्ति (ऐषणात्रय) और निवृत्ति (स्वतंत्रता, **स्वानुशासन**) का अविभाज्य वर्तमान है। मूलत: वृत्तियां, जीवन शक्तियों का अथवा जीवन प्रभाव क्षेत्र का, प्रत्यक्ष प्रभावीकरण है। मनुष्य का सम्पूर्ण कार्य कायिक, वाचिक व मानसिक कृत–कारित व अनुमोदित प्रभेदों के रूप में सर्वेक्षित तथ्य है। जागृत मनुष्य के कायिक, वाचिक क्रिया कलाप के मूल में, आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा व प्रमाणिकता का होना पाया जाता है। यह समग्र रूप ही जागृत मानसिकता का तात्पर्य है। अस्तु, मानसिकता सहित ही प्रत्येक मनुष्य, सम्पूर्ण

कार्य–कलापों को सम्पन्न करता है। ऐसे कार्यकलाप स्वयं व्यवस्था है व समग्र व्यवस्था में भागीदार हैं। इस रूप में कार्यरत होने की स्थिति में, मानवीय प्रवर्तन होना पाया जाता है। यह तभी सहज संभव होता है जब मानव परम्परा में मानवीयता को पहचानने, निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने में, लोकव्यापीकरण हो गया हो। लोकव्यापीकरण का कार्यक्रम, मानवीय शिक्षा, मानवीय संस्कार और मानवीय राज्य–व्यवस्था, मानव परम्परा में सुलभ हो गई हो। इसका प्रमाण यही है (अर्थात यह जब कभी भी, मानव के लिए सुलभ होगा) कि उस स्थिति में अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होगी। (**अध्याय :5.21, पृष्ठ नंबर: 119–120**)

- मनुष्य एवं अन्य प्रकृति में मौलिक विशेषता यह है।

1) मानवीय परम्परा में जीवन अपनी जागृति को, शरीर द्वारा व्यक्त कर सकता है, करना चाहता है।
2) मनुष्य ही कर्म स्वतंत्र – कल्पनाशील है।
3) भ्रमित रहते तक मनुष्य ही कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र है।
4) मनुष्य ही मनाकार को साकार करने वाला, मन: स्वस्थता का आशावादी है।
5) मनुष्य ही जागृति पूर्वक अपने स्वत्व स्वतंत्रता, अधिकारों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और अखंड समान रूपी सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित करता है।

इन पांचों प्रकार से मौलिकताओं की सहजतावश, जागृति पूर्वक ही मानव का संतुलित, नियंत्रित, नियमित होना, **स्वानुशासन**, स्वयं व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहज उत्साह, स्वयं स्फूर्त उत्सव के रूप में आचरित होगा। ऐसा हर मनुष्य होना चाहता है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 124–125**)

- जागृति, भ्रम मुक्ति का प्रमाण है, फलस्वरूप प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति **स्वानुशासन** के रूप में स्पष्ट होती है। ऐसी स्पष्टता को बनाए रखना ही तत्परता है। ऐसी तत्परता नित्य उत्सव को प्रावधानित करती है। इसलिए उत्साह का अर्थ जागृति पूर्वक, जीने की कला में सार्थक होता है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 128**)
- अस्तित्व, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सह–अस्तित्व वर्तमान है। सह–अस्तित्व में ही पूरकता, उदात्तीकरण, विकास, संक्रमण और जागृति व्याख्यायित है। सह–अस्तित्व नित्य प्रभावी है, इसका प्रमाण सत्ता में प्रकृति की अविभाज्यता है। इसी आधार पर अस्तित्व में परस्पर व्यवस्था है। इसका प्रमाण है – वर्तमान में विकास, जागृति, पूरकता और उदात्तीकरण। मनुष्य, अस्तित्व में दृष्टा होने के कारण प्रत्येक मनुष्य का जागृति पूर्ण परम्परा में होना, वर्तमान है। मनुष्य ही श्रेष्ठता का मूल्यांकन करता है। उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनीयता के आधार पर मूल्यांकन होना सहज है। उपयोगिता का ध्रुव बिंदु जागृति है। मनुष्य की उपयोगिता, स्थिरता व निरंतरता जागृति सहज विधि से, आवश्यकता से अधिक उत्पादन तन, मन व धन रूपी अर्थ का सम्बन्ध व मूल्यों में अर्पण–समर्पण करते हुए,

उत्सवित होना पाया जाता है। इसी से मनुष्य सर्वाधिक खुशी का अनुभव करता है और सुख का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

यही उपयोगिता–सदुपयोगिता का मापदण्ड है। सम्बन्ध व मूल्यों में, जीवन जागृति का लक्ष्य समाया रहता है। सदुपयोगिता का आधार मापदण्ड यही है कि परिवार मानव (अथवा मानव परिवार) तन, मन, धन रूपी अर्थ को सम्बंधों में अर्पित–समर्पित कर, प्रसन्नता और समाधान का अनुभव करता है। प्रसन्नता और समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करता है। प्रयोजनीयता का प्रमाण, जीवन जागृति सहज, **स्वानुशासन** है। समझदारी का प्रमाण, मानवीय कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करना ही है। यही उपयोगिता एवं सदुपयोगिता का प्रमाण है। मानवीयता का मार्गदर्शक, अतिमानव रूपी देव मानव व दिव्य मानव ही है। यही प्रयोजन है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 134–135**)

- अखंड समाज का कार्य रूप, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, "मानव जाति एक, मानव धर्म एक'' के आधार पर परस्पर सभी मनुष्यों की परस्परता में, सम्बन्ध पहचानने में आता है। अस्तित्व में जड़–चैतन्य प्रकृति, परस्पर सम्बन्धित है। क्योंकि सह–अस्तित्व, नित्य प्रभावी है। सह–अस्तित्व में अनुभव ही, मानव में परम जागृति है। सह–अस्तित्व ही परम सत्य है। परम जागृति के अनंतर उसकी निरंतरता वर्तमान होती है। अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही। **सत्य में अनुभव का प्रमाण ही स्वानुशासन है। स्वानुशासित** मनुष्य सहज ही, मानवीयता का प्रेरक, दिशा दर्शक होता है। इस प्रकार सत्य–धर्म, व्यवहार रूप में, चरितार्थ होने की व्यवस्था है। अस्तु मानव ही सत्य धर्म के प्रमाण के रूप में धारक वाहक है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 147**)
- **जागृत मनुष्य, व्यवसाय में नियमित रहता है। आचरण में नियंत्रित रहता है, विचारो में संतुलित व समाधानित रहता है अनुभव में जागृत रहता है। व्यवहार में प्रमाणित रहता है। समग्र व्यवस्था में भागीदार रहता है तथा स्वानुशासन के रूप में जागृति का सम्पूर्ण प्रमाण स्पष्ट होता है। इसे सर्व–सुलभ करना ही मानवीयता पूर्ण कार्य–क्रम है।** (**अध्याय :5.21, पृष्ठ नंबर: 159**)
- इस धरती पर मानव की स्थिति अस्तित्व सहज, सह–अस्तित्व क्रम में अवस्थित रहना स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरी विधि से यह स्मरण में रहना आवश्यक है तभी जीवन सहज मनोविज्ञान को जागृति प्रामाणिकता, प्रयोजनों के अर्थ में समझना सार्थक होता है। इसमें जीवन जागृत होना ही सर्वोपरि पहचान है। ऐसी जागृत मानसिकता के अर्थ में ही मानव संचेतना कार्य विधि और प्रयोजनों को स्पष्ट किया जाना इस मनोविज्ञान शास्त्र की अभिव्यक्ति में निहित है। शास्त्र का तात्पर्य भी यही है कि समझ, विचार, कार्य, व्यवहार, फल–परिणाम पुन: समझ के अनुरूप तृप्तिदायी, तृप्तिकारी और इसकी निरन्तरता होना यह **स्वानुशासन** स्वतंत्रतापूर्वक प्रमाणित होता है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 162**)

- कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु स्वतंत्रता है जो **स्वानुशासन** के रूप में प्रमाणित होता है। **स्वानुशासन** जीवन–जागृति, मानव जागृति, अस्तित्व में जागृति का प्रमाण है। जबकि स्वतंत्रता, मानव परम्परा अर्थात मानवीय शिक्षा संस्कार, संविधान, राज्य व्यवस्था का सामरस्यता है। यही अस्तित्व में, मानव के जागृत होने का साक्ष्य है। जागृत परम्परा की धारक वाहकता सहज प्रमाण, स्वराज्य के आधार पर मानवीय आचरण व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, परिवार, समाज, व्यवहार, न्याय व सर्वतोन्मुखी समाधान ही, सतत तृप्ति का स्रोत बना ही रहता है। फलस्वरूप प्रामाणिकता अर्थात अस्तित्व, सह–अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक और भौतिक रचना–विरचना सहज सत्य को जानना, मानना, उसकी तृप्ति बिंदु में जीना, उसका निरंतर वर्तमान होना ही प्रामाणिकता है। जागृति, भ्रम मुक्ति और मुक्त जीवन है। मुक्ति समझदारी और प्रमाणिकता प्रमाण सहज योगफल में होना पाया गया है। (**अध्याय : 5.21, पृष्ठ नंबर: 181–182**)
- भाषा मर्यादा के साथ व्यवहार, व्यवस्था और मूल्यांकन मर्यादाओं को सार्थकता के अर्थ में प्रयोजित करने का उद्देश्य समाहित है। इसमें हमारी निष्ठा बनी हुई है। जागृत मानव सार्थक श्रुरति परम्परा का स्वागत कर स्वीकार करता है। श्रुरति सहज श्रवण से पूर्णता, संपूर्णता, सार्थकता, बोध होता है, स्वयं स्फूर्त सम्प्रेषणाएं पूर्णता को प्रकाशित संप्रेषित करती है, प्रमाणित करने में तत्परता बनी ही रहती है। ऐसी पूर्णता "त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में ही प्रमाणित हो पाता है और समग्र व्यवस्था के रूप में परम्परा हो पाती है। मानव में, से, के लिए, सहज रूप में परम्परा, मानवत्व सहित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, **स्वानुशासन** के रूप में ही है। मानव–परम्परा का जागृति सहज परम्परा होना समीचीन है। इस प्रकार श्रुति का प्रयोजन जागृति के अर्थ में सहज सार्थक सार्वभौम रूप में होना स्पष्ट हो जाता है। अस्तु, मनुष्य के संदर्भ में यही तथ्य है। सुनने व सुनाने के उद्देश्यों में जागृति ही प्रधान है यही उभर कर आता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने में विश्वास कर सके, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान कर सके, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन को अनुभव कर सके; परिवार मूलक स्वराज्य को पहचान सके, उनमें भागीदार हो सके अखंड समाज को पहचान सके व उसका निर्वाह कर सके, **स्वानुशासन** को पहचान सके व निर्वाह कर सके। (**अध्याय : 5.31, पृष्ठ नंबर: 192**)
- इस विधि से मनुष्य शरीर द्वारा जीवन जागृति सहित अपने सम्पूर्ण स्वरूप को, सम्पूर्ण रूप में संप्रेषित और प्रमाणित करना चाहता है। संप्रेषणा ही श्रुति है। यही मानव परम्परा का वरदान है यही इसका मूल तत्व अर्थात प्रयोजन है। सार्थक कर्म–स्वतंत्रता रूपी और **स्वानुशासन** और सार्थक कल्पनाशीलता रूपी स्वराज्य सहज संप्रेषणा अभिव्यक्ति है। इस प्रकार (जीवन) अपने को प्रमाणित करने के क्रम में जीवन जागृति एक अपरिहार्य स्थिति है। इसे सफल बनाने के क्रम में सहअस्तित्व परस्परता में मानव परम्परा में संप्रेषित होना ही एक मात्र सूत्र है। यह मानव परम्परा में समझदारी के साथ ही ईमानदारी पूर्वक जिम्मेंदारी सहित सार्थक होना पाया जाता है। इसे स्वराज्य और स्वतंत्रता पूर्वक सार्थक परम्परा रूप देने के लिए श्रुति सहज अनिवार्यता सदा–सदा समीचीन है। इसे हर जागृत मानव को पहचानना, स्वीकृत करना सहज है। (**अध्याय : 5.31, पृष्ठ नंबर: 193**)

- व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। मूल्य और मूल्यांकन के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने की जितनी भी भाषा है वह सब श्रुति है। तन–मन–धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। परिवारीय आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा लाभ हानि मुक्त विनिमय के लिए जो भी भाषा है वह सब श्रुति है। जीवन–जागृति, प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान और **स्वानुशासन** के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है। **(अध्याय : 5.31, पृष्ठ नंबर: 196–197)**
- प्रेमानुभूति स्वयं स्वतंत्रता **स्वानुशासन** के रूप में प्रमाणित होता है। अस्तित्व में अनुभूति पूर्वक ही प्रेमानुभुति और अभिभूति प्रमाणित होता है। स्वतंत्रता जीवन का लक्ष्य है। अभिभूति ही नियम नियंत्रण, संतुलन न्याय, धर्म सत्य सहज विधि से पूरक होने का प्रमाण है। पूरक होने का प्रमाण मानव सम्बंधों के नैसर्गिक सम्बंधों में सार्थक होना पाया जाता है। मानव सहज मानव संचेतना का प्रमाण सहजता के आधार पर स्वानुशासन सहज ही सार्थक होना पाया जाता है। प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण अनन्यता है। प्रत्येक मनुष्य, अपने से विकसित के साथ अनन्यता को स्थापित करता है। यह जागृति परम्परा की महिमा है। **(अध्याय :5.31, पृष्ठ नंबर: 224)**
- "स्थिति सत्य'', "वस्तु स्थिति सत्य'', "वस्तु गत सत्य'' को जानना–मानना, अनुभव करना, अस्तित्व–दर्शन सूत्र है। कारण, गुण, गणितात्मक मानव भाषा को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानवीयता पूर्ण संप्रेषणा सूत्र है। वास्तविकता, यथार्थता व सत्यता पूर्ण विधि से, सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत–कारित अनुमोदित कार्यक्रमों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और प्रामाणिकता व **स्वानुशासन** रूपी कार्यक्रमों में जानना–मानना, अनुभव करना यह जागृति पूर्ण मानव परम्परा सूत्र है। निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्ण शिक्षा संस्कार सहजता को जानना–मानना और अनुभव करना यही मानवीय शिक्षा सूत्र है। जीवन सहज सम्पूर्ण क्रियाकलापों को जानना–मानना और अनुभव करना जीवन विद्या सूत्र है और मानवीयता पूर्ण व्यवहार, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, को जानना–मानना व्यवहार सूत्र है। व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता विधि को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानव परिवार सूत्र है। **(अध्याय : 5.5, पृष्ठ नंबर: 252)**

सन्दर्भ: मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

(संस्करण:प्रथम, मुद्रण:2007)

- ''जागृति मानव सहज स्वीकृति है।'' मानव सहज कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु स्वानुशासन है। यह परम जागृति के रूप में प्रमाणित होता है। यह मानव परंपरा में मौलिक विधान है।

  (अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 9)

- **राज्य** – परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था एवं भागीदारी
  1. सह–अस्तित्व सहज मानवत्व सहित व्यवस्था में वैभव
  2. मानव परंपरा में परिवार मूलक स्वराज्य, **स्वानुशासन** रूपी स्वतंत्रता सहज वैभव परंपरा।

  (अध्याय :2 , पृष्ठ नंबर: 17)

- स्वतंत्रता
  1. स्वयं स्फूर्त विधि से संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था में भागीदारी।
  2. पूर्णता सहज निरंतरता, मानवीय संस्कृति–सभ्यता, विधि–व्यवस्था सहज अक्षुण्णता एवं परम्परा।
  3. प्रामाणिकता व समाधान पूर्ण अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा व प्रकाशन क्रिया सहज परम्परा।
  4. **स्वानुशासन** पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्वक किया गया कार्य–व्यवहार–विचार विन्यास परम्परा।

  (अध्याय : 2, पृष्ठ नंबर: 19)

- **स्वानुशासन** स्वीकृति जागृति प्रामाणिकता प्रमाण के अर्थ में समाधान है। **(अध्याय :7, पृष्ठ नंबर: 159)**
- ग्राम स्वराज्य की मूलभूत इकाई समझदार परिवार है। परिवार स्वयं मानव चेतना मूल्य शिक्षा सम्पन्न मानवीयता पूर्ण व्यवस्था सहज मौलिक रूप है। मानवीयता स्वयं स्वराज्य एवं स्वतंत्रता का सूत्र स्वरुप है। स्वराज्य का तात्पर्य न्याय–सुलभता, उत्पादन–सुलभता और विनिमय–सुलभता है। इसके पूरकता में शिक्षा – संस्कार, स्वास्थ्य आवश्यक है। स्वतंत्रता का तात्पर्य प्रत्येक मानव का **स्वानुशासन** सहज प्रामाणिकता और समाधान पूर्वक अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होने से है, जो सहअस्तित्व रूपी परम सत्य अनुभव पूर्वक विधि से जानने व मानने से है अर्थात् सह–अस्तित्व में परस्पर संबंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने से है। यही शिक्षा–संस्कार, न्याय –सुरक्षा सुलभता स्त्रोत है। **(अध्याय : 10, पृष्ठ नंबर: 216)**
- ''मानव परंपरा में स्वायत्तता का स्वरूप स्थिति में स्वतंत्रता (**स्वानुशासन**) व गति में स्वराज्य है।'' **(अध्याय : 10, पृष्ठ नंबर: 217)**

- जागृत मानव परंपरा में हर नर–नारी **स्वानुशासनपूर्वक** अखंड सामाजिकता के अर्थ में अभिव्यक्त रहते हैं और मानवत्व सहित परिवार में व्यवस्था सहित परिवार में व्यवस्था, परिवारमूलक स्वराज्य–व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है। **(अध्याय : 12, पृष्ठ नंबर: 263)**
- स्वायत्तता स्वयं स्फूर्त स्व–**अनुशासन** रूपी स्वत्व स्वतन्त्रता, स्वराज्य अधिकार वैभव है। **(अध्याय : 12, पृष्ठ नंबर: 283)**

सन्दर्भ: जीवन विद्या – एक परिचय

(संस्करण: 2010: मुद्रण: 2017)

- Not found

सन्दर्भ: विकल्प

(संस्करण:2011,मुद्रण: 2016)

- Not found

सन्दर्भ: जीवन विद्या– अध्ययन बिन्दु

(संस्करण:2011, मुद्रण:2016)

- Not found

सन्दर्भः मानवीय आचरण सूत्र

(संस्करणः प्रथम, मुद्रणः 2003)

- जागृत मानव परम्परा में हर नर–नारी **स्वानुशासनपूर्वक** अखण्ड सामाजिकता के अर्थ में अभिव्यक्त रहते हैं और मानवत्व सहित परिवार में व्यवस्था, परिवार मूलक स्वराज्य–व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है। (अध्याय :, पृष्ठ नंबर:42)
- स्वायत्तता स्वयं स्फूर्त **स्व–अनुशासन** रूपी स्वतंत्रता, स्वराज्य वैभव है। (अध्याय :, पृष्ठ नंबरः 67)

सन्दर्भ: संवाद भाग १

(संस्करण: प्रथम, मुद्रण: 2011)

- मानवीयतापूर्ण आचरण में ज्ञान विवेक और विज्ञान प्रमाणित होता है। मानवीयता पूर्ण आचरण ही मानवकृत व्यवस्था का आधार है। मानवीयता पूर्ण आचरण रूपी प्रमाण चारों अवस्थाओं के साथ जुड़ा है। चारों अवस्थाओं के साथ में मानव का व्यवस्था रूप में व्यक्त होना ही **स्वानुशासन** है। **(अध्याय : , पृष्ठ नंबर: 97)**

सन्दर्भ: संवाद भाग २

(संस्करण: 2013)

- प्रत्येक एक अपने वातावरण सहित संपूर्ण है। वातावरण सहित संपूर्ण होने का मतलब है निश्चित आचरण करना। मूल वस्तु (सह अस्तित्व) को परिशीलन करने पर मैंने पाया सत्ता में संपृक्त होने से प्रत्येक संपूर्णता और पूर्णता में गर्भित है। गठन पूर्णता के पूर्व (जड़ प्रकृति) संपूर्णता को व्यक्त करते हैं गठन पूर्णता के बाद (चैतन्य प्रकृति या जीवन) पूर्णता को व्यक्त करते हैं। जड़ प्रकृति पूर्ण (सत्ता) में गर्भित होकर पूर्णता (गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता) के लिए काम कर रही है। मनुष्येत्तर प्रकृति संपूर्णता के साथ "त्व सहित व्यवस्था" है। मानव प्रकृति पूर्णता के साथ "त्व सहित व्यवस्था" है। इसके आधार पर सारी बात व्यवस्था के लिए सूत्र बद्ध हो जाती है। सूत्र बद्ध होने से अध्ययन सुगम हो जाता है। इन चार पाँच मूल सूत्रों के आधार पर ही मैं अपनी सारी बात करता हूँ। मानव यदि इसका अध्ययन कर पाता है तो उसमें स्वानुशासन स्वरूपी स्वयंस्फूर्त अर्थव्यवस्था की प्रवृत्ति उदय होगी। स्वानुशासन स्वरूप ही स्वतंत्रता है। बाकी सब आरोप है या तो हम किसी पर प्रभाव डालने में व्यस्त रहते हैं या किसी से प्रभावित होने में व्यस्त रहते हैं। **(अध्याय : , पृष्ठ नंबर: 173)**